गुरु हर गोबिंद साहिब
(1595–1644, गुरगद्दी 1606–1644)

गुरु हर गोबिंद साहिब का जन्म गुरु अर्जन देव जी के गृह अम्रतसर के निकट गाँव वडाली में 19 जून 1595 में हुआ। गुरु जी की प्रारंभिक जीवनी का कुछ वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

अपने पिता (गुरु अर्जन देव जी) की शहादत के बाद गुरु जी ने 'आदि ग्रंथ' साहिब का पाठ बाबा बुड्ढ़ा जी से और गुरबाणी का कीर्तन हरिमंदर साहिब के रागियों से करवाया। यह दस दिन तक होता रहा। जब सब संस्कार पूर्ण हुए तो बाबा बुड्ढ़ा जी ने गुरगद्दी का तिलक लगाने की तैयारी आरंभ की। यहाँ यह स्मरण रहे कि जब गुरु अर्जन देव जी की पत्नी माता गंगा जी, बाबा बुड्ढ़ा जी के पास एक पुत्र के लिए अरदास करने के लिए गये थे, तो माता जी ने उनके लिए प्रसाद अपने हाथों से तैयार किए थे और प्रसादों के साथ प्याज भी ले गये थे। बाबा बुड्ढ़ा जी ने प्रसादा छकते हुए कहा था, "गुरु जी सारे भंडारे के मालिक हैं, पर मुझे इस भंडार को खोलने का हुक्म हुआ है। जैसे आपने मुझे मेरे मन को संतुष्ट करने वाला भोजन छकने के लिए दिया है, ऐसा ही आपको आपके मन को संतुष्ट करने वाले पुत्र का दान प्राप्त होगा। वह बड़ा सुन्दर और बहादुर, सांसारिक और दैवी शक्तियों का मालिक, तगड़ा शिकारी होगा, शाही घोड़ों की सवारी करेगा, दो तलवारें पहनेगा, युद्ध में बलवान और मुगलों को कुचलने वाला होगा। जैसे मैंने इन प्याजों को तोड़ा है, इसी तरह आप का पुत्र शत्रुओं के सिर तोड़ेगा और एकदम एक महान योद्धा और उच्च पदवी वाला गुरु होगा। वह एक गाँव का छोटा–सा फकीर नहीं होगा, बल्कि शानदार शाही तख्त पर बैठेगा।" चली आती मर्यादा के अनुसार बाबा बुड्ढा जी ने गुरु जी के सम्मुख एक सेली (ऊन की डोरी जो पिछले गुरु साहिबान माला की तरह गले में पहनते या सिर के इर्दगिर्द लपेटते थे) और एक दस्तार, गुरु जी के अधिकार के निशान के तौर पर, रखीं। गुरु जी ने सेली को खजाने में रख देने के लिए आदेश दिया और बाबा बुड्ढ़ा जी को उनकी भविष्यवाणी याद दिलाते हुए कहा, "मेरा यत्न आपकी भविष्यवाणी को पूरा करने का होगा। मेरी सेली तलवार का गातरा होगी। और मैं अपनी दस्तार शाही कलगी से सजाऊँगा। मुझे सेली के बदले एक तलवार दो।" तलवार लाई गई, पर बाबा बुड्ढ़ा जी ने गुरु जी के उल्टी तरफ पहना दी। गुरु जी ने कहा, "एक और तलवार लाओ, मैं दो तलवारें पहनूँगा।" गुरु जी ने दो तलवारें पहनीं जो 'पीरी'(आध्यात्मिकता) और 'मीरी'(सांसारिकता) के अधिकार की निशानियाँ थीं, भक्ति और शक्ति का संयोजन(सुमेल)।

अकाल तख्त साहिब :

गुरु अर्जन देव जी की शहादत मानव इतिहास में एक अद्वितीय घटना थी। गुरु जी सर्व–शक्तिमान थे। वे इस स्थिति को जैसे चाहते, टाल सकते थे, पर उन्होंने सारे कष्ट झेले, संसार को यह बताने के लिए कि कैसे सारे दुखों–सुखों में अकाल पुरुख की इच्छा के आगे खिले माथे(खुशी–खुशी) सिर झुकाना है। असल में, आदि ग्रंथ साहिब में अंकित बाणी केवल योगियों, सन्यासियों या मुसलमान सूफियों के लिए ही नहीं, जो हिमालय पर्वत की कन्दराओं में अकेले बैठकर जगत से नाता तोड़कर अकाल पुरुख की पूजा में लगे हैं, बल्कि आदि ग्रंथ साहिब के उपदेश गृहस्थ जीवन के लिए अंकित किए गये थे। गुरु साहिबान ने स्वयं गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए व्यवाहारिक मिसालें दीं कि कैसे गुरु उपदेशों के अनुसार जीवन को जीना है।

गुरु अर्जन देव जी की दर्दनाक और यातनापूर्ण शहादत ने लोगों में रोष की बहुत तगड़ी लहर पैदा कर दी। गुरु जी की प्रकाशमयी, पर उदासीन नहीं, कष्टों भरी शहीदी ने लोगों में एक नई रूह और ज़िंदगी भर दी और उन्होंने सत्य और न्याय की खातिर लड़ने और अपने आप को कुर्बान करने का प्रण कर लिया। सदियों से अनगिनत हिंदू पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे, मुस्लिम तलवार का शिकार हो चुके थे, लेकिन इससे उन पर जुल्म करने वालों के पत्थर दिल नरम न हुए, बल्कि वे और अधिक ज़ालिम और वहशी बन गये। कभी–कभी गुनाहगारों को, झूठ और अन्याय के अहिंसक तरीकों से विरोध करके सुधारा

जा सकता है। सच्चे उद्देश्य के लिए चुपचाप विरोध करना और कष्ट सहना किसी–किसी ज़ालिम को उसके बुरे कर्मों की ओर ध्यान दिला सकता है और वह शायद सुधर भी जाए। पर इतिहास इस बात का गवाह है कि एक ज़ालिम जो कठोर हो चुका हो और गुनाह के क्रूर तरीकों में डूबा हुआ हो और जो नैतिक और सभ्य व्यवहार की मूल कद्रों–कीमतों की ओर ध्यान नहीं देता, उसके विरुद्ध अहिंसा का बड़े से बड़ा रास्ता भी सफल नहीं हो सकता। ऐसे मनुष्यों के विरुद्ध अहिंसा केवल नीच कायरता का दूसरा नाम है। ताकत के नशे में मगरूर ऐसे लोगों का सामना उनकी लाठी से भी बड़ी लाठी के साथ करना ज़रूरी है। गुरु हर गोबिंद साहिब के गुरगद्दी पर बैठने के बाद कुछ मसन्द गुरु जी की माता के पास निवेदन करने आए कि गुरु जी से पहले पाँच गुरु साहिबान ने कभी शस्त्र नहीं पकड़े। अब अगर बादशाह जहाँगीर ने सुन लिया कि अब गुरु जी शस्त्रधारी हो गये हैं, तो वह गुस्सा हो उठेगा और फिर सिख कहाँ जाकर छिपेंगे ? माता जी ने मसन्दों को तो हौसला दिया, पर जवान गुरु जी को समझाया, "मेरे पुत्र, हमारे पास कोई खजाना नहीं, सरकारी आमदनी नहीं, न जमीन–जायदाद है, और न कोई फौज। अगर तुम अपने पिता और दादा जी के कदमों पर चलो, तो तुम प्रसन्न रहोगे।" गुरु जी ने उत्तर में इस तुक का उच्चारण किया :

"राखा ऐकु हमारा सुआमी।
सगल घटा का अंतरजामी।"

(भैरउ महल्ला 5, पृष्ठ 1136)

और कहा, "माता जी, कोई चिन्ता न करो। सब कुछ अकाल पुरुख की रज़ा के अनुसार ही होगा।"

गुरु जी ने मसन्दों को आदेश भेजा कि अगर गुरसिख माया की जगह शस्त्र और घोड़े भेंट करने के लिए लाएगा, तो गुरु जी अधिक प्रसन्न होंगे। गुरु जी ने हरिमंदर साहिब के सामने सन् 1606 (आषाढ़ शुक्ल पक्ष पाँच, सम्वत् 1663) में अकाल तख्त की नींव रखी और इसका निर्माण 1609 में पूरा हुआ। अकाल तख्त करीब दस फुट ऊँचे थड़े पर पक्की ईंटों से बनाया गया और यह एक तख्त जैसा दिखता था। गुरु जी इस पर बैठे। गुरु जी ने अकाल तख्त हरिमंदर से कुछेक गज की दूरी पर बनाया, इस ख़्याल से कि अकाल तख्त आकर एक सिख यह न भूले कि आध्यात्मिक उच्चता उतनी ही ज़रूरी है, जितनी कि उसकी सामाजिक जिम्मेदारियाँ। असल में, गुरु जी अपने सिखों को 'संत सिपाही' बनाना चाहते थे, जो अत्यंत सभ्य, उच्च दर्जे के सदाचारी जिसके साथ आध्यात्मिक उच्चता भी हो, और जो सदैव राक्षसी शक्तियों से लोहा लेने को तत्पर हो। बाबा बुड्ढ़ा जी ने गुरु जी को शस्त्रों से लैस देखा तो उन्हें थोड़ा समझाने लगे। पर गुरु जी ने उत्तर दिया, "गुरु घर में धर्म और सांसारिक खुशियाँ इकट्ठी की जाएंगी– देग गरीबों और ज़रूरतमंदों में बांटने के लिए और तेग(कटार), ज़ालिमों को मारने के लिए।" (जो सिख कहते हैं कि सांसारिक और व्यवहारिक मामले हमारे गुरद्वारों में धार्मिक मसलों से अलग रहने चाहिए, उन्हें गुरु जी के इन वचनों की ओर ध्यान देना चाहिए।)

कई योद्धे और पहलवान गुरु जी के पास सेवा के लिए आए। गुरु जी ने बावन शूरवीरों को अपने अंग–रक्षक के तौर पर नियुक्त कर दिया और यह गुरु जी की भविष्य की फौज का बीज–केन्द्र बन गया। करीब पाँच सौ जवान पंजाब से गुरु जी के पास सेवा में भर्ती होने के वास्ते आए। गुरु जी ने भाई बिधी चंद, भाई जेठा, भाई प्यारा और भाई पिराना – हरेक को सौ–सौ घुड़सवारों की टुकड़ी का कप्तान बना दिया। लोग हैरान होने लगे कि गुरु जी ऐसी फौज किस तरह कायम रख सकेंगे। गुरु जी ने यह तुक सुनाई :

"काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ।
सैल पत्थर महि जंत उपाए ताका रिजकु आगै करि धरिया।"

(गूजरी महल्ला 5, पृष्ठ 495)

अकाल तख्त एक संस्था बन गया जो इस विचार का चिह्न था कि न्याय की रक्षा और अपनी सुरक्षा के लिए तलवार का प्रयोग ज़रूरी है। यहाँ गुरु जी तख्त पर बैठकर सामने वाले खुले अखाड़े में अपने सिखों की कुश्तियों और फौजी कमाल को होते हुए देखा करते। यहाँ पर सभी जटिल मामलों और झगड़ों के निपटारे गुरु जी द्वारा किए जाने के कारण अकाल तख्त सिखों की एक सर्वोच्च अदालत का मनोरथ पूरा करने लग पड़ा। तख्त के अलावा, गुरु जी ने शाही पद के अन्य सभी चिह्न धारण कर लिए,

जैसे कि छत्र, तलवारें, कलगी और बाज और इस तरह सिख उन्हें 'सच्चा पातशाह' कहने लगे, हर प्रकार से बादशाह दीखने वाले, लेकिन अपने कार्यों और पावनता में उतने ही महात्मा और महान जितने पिछले पाँच गुरु साहिबान थे। लोग सांसारिक कामों के नेतृत्व के लिए अकाल तख्त की ओर देखते। यह प्रथा इतनी महत्वपूर्ण हो गई कि अकाल तख्त पर जो फैसला एक बार हो जाता, सिख उत्साह के साथ उसे मान लेते और यही कारण था कि वह सदा हर मुसीबत पर काबू पा लेते। इस प्रथा की वृद्धि ने सिख लहर को पक्का करने में बहुत बड़ी सहायता की।

कुछ लेखक दोष लगाते हैं कि राजनीति के आकर्षण और शस्त्रों के ठाठबाठ ने गुरु जी को एक धार्मिक और आध्यात्मिक नेता के सच्चे राह से दूर कर दिया। उनका यह निर्णय बिलकुल बेबुनियाद है। पहली बात, गुरु जी का कोई राजनैतिक मनोरथ नहीं था और समय ने इसे साबित भी कर दिया कि उनका ऐसा कोई मनोरथ नहीं था। दूसरा, उनका नित्य का नियम था कि पहले हरिमंदर साहिब जाना, 'आसा दी वार' का कीर्तन सुनना, और फिर सिखों को धार्मिक उपदेश देना। गुरु जी सिख धर्म के प्रचार में गहरी दिलचस्पी लेते थे और देश के भिन्न–भिन्न स्थानों पर जाकर गुरसिखी के उपदेश देते थे। पर गुरु जी की नीति अपने आप में ही समय की चुनौती का उत्तर दर्शाती थी। भाई गुरदास जी ने उस समय के अनौखे हालात के तहत गुरु जी की ओर से नीति का बदला जाना उचित सिद्ध किया है :

> "जैसे कुएँ में से पानी निकालने के लिए डोल की गर्दन को रस्सी से बांधना पड़ता है, जैसे मणि निकालने के लिए साँप को मारना पड़ता है, जैसे कस्तूरी लेने के लिए हिरण का वध करना होता है, जैसे तेल के लिए तिलों को पीसना पड़ता है, अनार के दाने लेने के लिए अनार को तोड़ना ज़रूरी है, इसी तरह मूर्खों को सुधारने के लिए तलवार पकड़नी पड़ती है।"
>
> (भाई गुरदास, वार 34, पउड़ी 13)

गुरु हर गोबिंद जी पहले गुरु प्रतीत होते हैं जिन्होंने बाकायदा शिकार करने की ओर ध्यान दिया। अमृतसर में होने पर उनका नित्यकर्म था– सवेरे पौ फटे जागकर स्नान करना, पूरे शस्त्र–वस्त्र पहनकर हरिमंदर साहिब जाना और वहाँ 'जपु जी' और 'आसा दी वार' का पाठ–कीर्तन सुनना। अरदास समाप्ति के बाद वापस आकर सिखों को उपदेश देते थे। उसके बाद गुरु जी की फौजों और उनके श्रद्धालुओं को एक पंगत में बिठाकर बिना किसी भेदभाव के नाश्ता करवाया जाता था। उसके बाद, गुरु जी कुछ समय आराम करते और फिर शिकार खेलने के लिए जाते। साथ में ढोल बजाने वाले, शिकारी कुत्ते, पालतू चीते और हरेक तरह के बाज होते। दोपहर ढलने के बाद गुरु जी अकाल तख्त पर बैठकर मिलने आए सिखों और दूसरी संगतों को दर्शन देते। रागी गुरबाणी का गायन करते और संध्या समय सोदर का पाठ होता। अन्त में, बहुत तरह के साजों का संगीत होता। उसके बाद सारी संगतें शाम के भोजन के लिए चली जातीं। इसके बाद एक कीर्तन समारोह होता, गुरबाणी का गायन किया जाता और फिर अब्दुला, सिखों की बहादुरी के कारनामों से प्रेम करने और योद्धाओं में आने वाली व्यर्थ की चिन्ताओं दूर करने के लिए 'वारां'(युद्ध के गीत) सुनाता। फिर कीर्तन सोहिले के पाठ के बाद गुरु जी अपने निजी स्थान पर विश्राम करने चले जाते।

बन्दी छोड़ :

चंदू भयभीत था कि गुरु जी शायद अपने पिता की शहादत का बदला लें। उसकी पुत्री अभी भी ब्याही नहीं गई थी और चंदू ने गुरु जी को इसके रिश्ते के लिए लिखा, जिसे गुरु जी ने अस्वीकार कर दिया। इस पर चंदू ने गुरु जी के विरुद्ध बादशाह जहाँगीर के पास एक बार फिर शिकायत की। बादशाह ने वजीर खान[1] की मार्फत गुरु जी को दिल्ली बुलाया। सोच–विचार कर गुरु जी दिल्ली जाने के लिए राजी हो गये। अपने पीछे सांसारिक कार्यों का उत्तरदायित्व बाबा बुड्ढा जी को और धार्मिक कार्यों की जिम्मेदारी भाई गुरदास जी को सौंपकर गये। गुरु जी ने आदेश दिया, "हरिमंदर साहिब विशेष तौर पर अकाल पुरुख की सेवा के लिए अर्पित है। सो, इसका सदैव सत्कार किया जाए। इसे कभी भी मानव शरीर की अशुद्धता से अपवित्र न किया जाए। इसके अन्दर जुआ, शराबनोशी, स्त्रियों के संग दुर्व्यवहार या निन्दा की बिलकुल मनाही हो। इस स्थान पर कोई चोरी, झूठ बोलना, तम्बाकू पीना या मुकदमेबाजी न की जाए।

सिखों की तरफ से सब सिखों, धर्मात्मा पुरुषों, अतिथियों, पराये सज्जनों, गरीबों और निराश्रितों की सदा आवभगत की जाए।
मेरे सिख सदैव नम्रता धारण किए रखें, अकाल पुरुख का सुमिरन करें, अपने धर्म की उन्नति करें, गुरबाणी का विचार करें और गुरु जी के आदेशों का पालन करते रहें।" इसके बाद गुरु जी दिल्ली चले गये।

वज़ीर खान के रसूख के कारण बादशाह ने प्रगट तौर पर गुरु जी का बहुत आदर किया। गुरु जी को बेहद जवान और गुरगद्दी का मालिक देखकर बादशाह ने इनके साथ बहुत सारा रूहानी विचार–विमर्श किया, गुरु जी के रूहानी ज्ञान को परखने के लिए।

बादशाह ने सुन रखा था कि गुरु जी शिकार खेलना पसन्द करते हैं, सो उसने गुरु जी को एक दिन शिकार खेलने के लिए साथ चलने का अनुरोध किया। जंगल में एक शेर बादशाह की ओर तेजी से दौड़ा। हाथी और घोड़े डर गये। शेर की तरफ गोलियाँ और तीर चलाये गये, पर व्यर्थ गये। बादशाह डर से सुन्न हो गया और गुरु जी से विनती की कि उसे बचायें। गुरु जी अपने घोड़े से एकदम नीचे उतरे और अपनी तलवार और ढाल पकड़कर शेर और बादशाह के बीच दौड़कर खड़े हो गये। जैसे ही शेर उछला, गुरु जी ने उस पर तलवार का वार किया और शेर का मृत शरीर जमीन पर ढह गया। बादशाह ने परमात्मा का शुक्र किया कि गुरु जी ने बड़ी बहादुरी से उसकी जान बचा दी।

बादशाह ने आगरा जाना था और उसने गुरु जी को साथ चलने के लिए विनती की। बहुत बार कहने पर गुरु जी संग जाने के लिए तैयार हो गये। जब दोनों आगरा पहुँचे तो वहाँ की संगतों ने गुरु जी का अपार खुशी के साथ स्वागत किया। गुरु जी और बादशाह की बढ़ रही मित्रता को देखकर चंदू अपने मन में सोचने लगा, "इस तरह तो गुरु जी जब भी मौका मिलेगा, मेरे से बदला लेंगे। मैं तभी बच सकता हूँ, अगर किसी न किसी तरह इस मित्रता को तोड़ने या उन्हें कैद करवाने में सफल हो जाऊँ और इसके लिए मुझे हर तरह की कोशिश करनी चाहिए।"

बादशाह बीमार हो गया और उसने अपने ज्योतिषी को इसके ग्रह परखने और इलाज खोजने के लिए बुला भेजा। चंदू ने इस स्थिति का लाभ उठाया। ज्योतिषी को बहुत भारी रिश्वत देकर गुरु जी और बादशाह की मित्रता तोड़ने के लिए तैयार किया। ज्योतिषी ने उसी तरह बादशाह को सलाह दी कि एक धर्मात्मा आदमी को ग्वालियर के किले में भेजकर बादशाह की अरोगता के लिए उपासना करवानी चाहिए। दूसरी ओर, चंदू ने बादशाह को सलाह दी कि गुरु हर गोबिंद साहिब सबसे अधिक धर्मात्मा पुरुष हैं, और इस प्रकार उसने दोगला काम किया। जहाँगीर ने गुरु जी को ग्वालियर किले में जाने के लिए विनती की, जिसे उन्होंने बिना झिझक परवान कर लिया, क्योंकि वहाँ एक और धर्म कार्य आपकी प्रतीक्षा में था।

किले में जब पता लगा कि गुरु जी आ रहे हैं, तो खुशी की एक लहर दौड़ गई। वहाँ बावन राजाओं को कैद किया हुआ था, जो परेशान होकर और रोते–तड़पते दिन गुजार रहे थे। उन्हें विश्वास था कि गुरु जी बिचौले बनकर उनको रिहा करवा देंगे। किले का प्रबंधक हरी दास भी खुश था, क्योंकि वह गुरु जी के दर्शन के लिए सोच रहा था। वह गुरु जी का आगे बढ़कर स्वागत करने के लिए आया और दंडवत प्रणाम किया। गुरु जी सभी राजाओं से मिले, दिलासा दिया और शान्ति प्रदान की, जिससे वे कष्ट में ही प्रसन्नचित्त हो गये।

चंदू ने दो खत हरी दास को लिखे कि गुरु जी को ज़हर देकर खत्म कर दे। पर उसने दोनों खत गुरु जी के सामने लाकर रख दिए, क्योंकि वह गुरु जी का सिख बना हुआ था। गुरु जी ने उस समय यह 'शबद' पढ़ा :

"निंदकु ऐसेही झरि परीऐ।
इह नीसानी सुनहु तुम भाई जिउ कालर भीति गिरीऐ। रहाउ।
जउ देखै छिद्र उति निंदकु उमाहै भलो देखि दुख भरीऐ।
आठ पहर चितवै नही पहुचै बुरा चितवत चितवत मरीऐ।
निंदकु प्रभु भुलाया कालु नेरै आया हरि जन सिउ बाट उठरीऐ।
नानक का राखा आपि प्रभु सुआमी किया मानस बपुरे करीऐ।"

(बिलावलु महल्ला 5, पृष्ठ 823)

जहाँगीर बीमारी से राजी हो गया। गुरु जी अभी भी ग्वालियर किले में थे। जब बादशाह ने वज़ीर खान की गुरु जी के लिए दलील सुनी (कई कहते हैं कि सांई मीआं मीर की भी), उसने हुक्म दिया कि गुरु जी को उसके सामने पेश किया जाए। यह सुनकर कई कैदी राजा दुखी हो गये। गुरु जी ने यह कहकर किले में से बाहर आने से इन्कार कर दिया, कि जब तक सारे राजाओं को रिहा नहीं किया जाता, वे किले से बाहर नहीं आएँगे। जहाँगीर ने गुरु जी की इच्छा मानकार सभी बावन राजाओं को रिहा कर दिया। इसलिए ग्वालियर में गुरु जी को अभी भी 'बन्दी छोड़' कहा जाता है। ग्वालियर के इस ऐतिहासिक किले में गुरु जी की याद में आज भी एक गुरद्वारा बना हुआ है।[2]

मीआं मीर ने बादशाह जहाँगीर को गुरु अर्जनदेव जी की निर्दोषता का यकीन दिलाया और कहा कि तेरे ज़ालिम हुक्म के तहत उस इलाही गुरु को यातनाएँ देकर मौत के घाट उतार दिया गया। पर बादशाह ने कहा कि उसका इस में कोई हाथ नहीं और गुरु जी को यातनाएँ देने की सारी जिम्मेदारी चंदू की है। बादशाह के हुक्म से चंदू को गिरफ्तार करके लाहौर ले जाया गया, जहाँ उसे मौत की सजा दी जानी थी। उसका लाहौर की सड़कों पर जुलूस निकाला गया, लोगों ने उस पर मैला फेंका और खूब लानत–मलामत की। एक भट्ठी पर दाने भूनने वाले ने चंदू के सिर पर लोहे का कड़छा जोर से दे मारा और चंदू की मौत हो गई। जब बादशाह को चंदू की मौत की खबर मिली तो उसने कहा कि वह पूरी तरह से ऐसी ही मौत का हकदार था। पर गुरु जी ने अरदास की कि चंदू ने इस जन्म में अपने पापों की सजा का कष्ट पा लिया है, अकाल पुरुख जी अब इसे बख्श दें।

काबुल के मसन्द सुजान ने संगतों की ओर से गुरु जी के लिए आए 'दसवंध'(दसवां हिस्सा) और अन्य उपहारों में से कुछ हिस्सा निकालकर बहुत सारा धन इकट्ठा कर रखा था। उसे पता चला कि गुरु हर गोबिंद साहिब घोड़ों को बहुत पसन्द करते हैं। उसने दूर–दराज इलाके में खोज की और आखिर में एक दुर्लभ सुन्दरता और चाल वाला एक घोड़ा उसे मिल गया, जिसे उसने गुरु जी को भेंट करने के लिए एक लाख रुपये में खरीद लिया। गुरु जी की ओर आ रहा सुजान जब सिन्ध दरिया पार कर रहा था, तो एक अफसर की नज़र घोड़े पर पड़ी और उसकी अनूठी चाल और सुन्दरता देखकर उसने घोड़े को अपने कब्जे में कर लिया, यह कहकर कि यह तो बादशाह को भेंट
करने लायक है और वहाँ भेजा जाएगा। सुजान ने गुरु जी से घोड़ा छीन लिये जाने का हाल सुनाया। गुरु जी ने उसे धीरज बंधाया और कहा कि इस घोड़े की सवारी सिवाय उनके और कोई नहीं करेगा।

जब बादशाह घोड़े पर सवार होने लगा तो घोड़े ने अपना सिर घुमा लिया जिसे बुरा शगुन समझा गया। कुछ समय बाद घोड़ा बीमार पड़ गया। न वह कुछ खाता था, न पीता था। जितने भी इलाजों की जानकारी थी, किये गये, पर सब व्यर्थ गये। जब घोड़ा मरने के करीब था तो मुख्य काज़ी रुस्तम खान ने सुझाव दिया कि अगर इसके लिए कुरान पढ़ी जाए तो शायद यह ठीक हो जाए। सो, घोड़ा काज़ी को दे दिया गया।

जब काज़ी घोड़ा लेकर घर की ओर जा रहा था तो गुरु जी के तम्बुओं के पास से गुजरते हुए (गुरु जी उस समय लाहौर में थे) घोड़ा हिनहिनाया। काज़ी से बात करके घोड़ा गुरु जी के लिए दस हजार रुपये में खरीद लिया गया। गुरु जी ने घोड़े की गर्दन थपथपाई और घोड़ा ठीक होना शुरू हो गया।

कौलां :

काज़ी की एक सुन्दर बेटी थी, कौलां[3] जो मीआं मीर की श्रद्धालू थी। बचपन से ही उसने अपने मन को परमात्मा के नाम की महिमा गाने और सन्तों की संगत में परमात्मा का सुमिरन करने में लगा रखा था। मीआं मीर जी की पावन संगत के माध्यम से उसने गुरु हर गोबिंद साहिब की महिमाएँ सुन रखी थीं और वह अपने परिवार में गुरु जी का गुणगाण करती थी। इस पर उसके पिता को बहुत गुस्सा आया। वह उससे बोला, "ओ काफ़िर लड़की, तू एक काफ़िर (गुरु) की तारीफ करती है और मुहम्मद साहिब के कायदे–कानून को नहीं मानती, जिसके तहत ऐसा करना मना है, नहीं तो इसकी सज़ा मौत है ?" कौलां ने

उत्तर दिया, "बापू जी, मुहम्मद साहिब का कानून धर्मी बन्दों पर लागू नहीं होता। सन्त फकीर परमात्मा के चाकर होते हैं।" यह सुनकर काज़ी
क्रोध की आग में जल उठा। अपने साथी काज़ियों के संग सलाह–मशवरा
करके, मुहम्मद साहिब के कायदे–कानून के बरखिलाफ जाने के कारण उसने अपनी बेटी के लिए मौत का हुक्म सुना दिया।

कौलां की माँ ने अपनी बेटी और मीआं मीर को काज़ी की ओर से जारी किए गये मौत के फतवे के बारे में बताया। मीआं मीर जी ने कौलां को सलाह दी, "इस सज़ा से तुझे बचाने का कोई रास्ता दिखाई नहीं देता। यही अच्छा होगा कि तू अमृतसर गुरु हर गोबिंद साहिब की शरण में जाकर उनसे रक्षा की विनती कर। दूसरा कोई तुझे नहीं बचा सकता।" कौलां ने मीआं मीर जी की सलाह मान ली और अमृतसर चली गई।

कौलां ने गुरु जी की सुरक्षा के अधीन जीवन व्यतीत करना आरंभ कर दिया। रहने के लिए उसे एक अलग मकान दिया गया। कौलां को नीचे लिखे 'शबद' बार–बार पढ़ने से बड़ा धीरज मिलता थाः

"माई संत संगि जागी।
प्रिय रंग देखै जपती नामु निधानी। रहाउ।
दरसल पिआस लोचन तार लागी।
बिसरी तिआस बिडानी।
अब गुरु पाइओ है सहज सुखदायक दरसनु पेखत मनु लपटानी।
देखि दमोदर रहसु मनि उपजिओ नानक पिअ अमृत बानी।"
(केदारा महल्ला 5, पृष्ठ 1119)

इस तरह काफी समय बीत गया कि एक दिन कौलां ने अपना सारा जेवर गहना लेकर गुरु जी के सामने रख दिया और विनती की, "हे गरीब निवाज, इस गहने को बेचकर मिलने वाली रकम को किसी धार्मिक काम में लगा दें, जिससे दुनिया में मेरा नाम कुछ समय तक याद किया जाता रहे।" गुरु जी ने उस रकम से सन् 1621 में कौलां के नाम का एक सरोवर तैयार करवा दिया। यह सरोवर आज भी अमृतसर में कौलसर नाम से प्रसिद्ध है। गुरु जी ने बिबेकसर नाम का एक और सरोवर भी बनवा दिया, उस स्थान की याद में जहाँ गुरु जी ने अपने सिखों को परमार्थ का उपदेश दिया था। अब हरिमंदर साहिब के आसपास पाँच सरोवर है : संतोखसर, अमृतसर, रामसर, कौलसर और बिबेकसर।

मुगल फौजें और गुरु जी :

बादशाह जहाँगीर की मौत कश्मीर में हो चुकी थी और उसका बेटा शाहजहाँ भारत का बादशाह बन गया था।

जब पृथिये के पुत्र मेहरबान ने चंदू की मौत के बारे में सुना तो उसे बड़ा दुख हुआ और अपने आप से कहने लगा, "सुलही खान मर गया जब उसने गुरु जी का विरोध किया, मेरा पिता मर गया क्योंकि वह गुरु जी का विरोधी था। अब चंदू मारा गया है। गुरु जी के पास कौन–सा जादू है कि कोई भी उनका सामना नहीं कर सकता।" मेहरबान ने चंदू के पुत्र से पगड़ी बांटी और उससे सारी उम्र के लिए मित्रता कर ली। फिर, उसके साथ सलाह–मशविरा किया कि गुरु जी को किस तरह तबाह किया जाए। उन्होंने शाहजहाँ के मन में गुरु जी के विरुद्ध ज़हर भरना आरंभ कर दिया। गुरु जी ने अपने सम्माननीय सिखों को मेहरबान के पास भेजा यह समझाने के लिए कि वह अपने विरोधी और नीच मंसूबों से बाज आए। गुरु जी स्वयं भी मेहरबान के पास गये, सुलह–सफाई की बात की, पर सब व्यर्थ रहा।

शाहजहाँ ने अलग धार्मिक नीति अपना ली थी। उसने कट्टरता का पक्ष लिया और उसके राज्य के समय धार्मिक हठधर्मी ऊँचाइयों पर पहुँच गई थी। उसने नये–नये मुसलमान बने लोगों की भलाई में गहरी दिलचस्पी ली। अगर कोई मुसलमान अपना धर्म छोड़ देता तो उसके साथ बड़ी सख्ताई से पेश आया जाता। पंजाब में कुछ मंदिरों का निर्माण हो रहा था, वे गिरा दिए गये और उनकी जगह मस्जिदें बनाई

गईं। उसका मन गुरु जी के दुश्मनों ने गुरु जी प्रति बहुत खट्टा कर दिया था और सन् 1611 से चले आ रहे मित्रता के संबंध जल्द ही तोड़ दिए गये और सिखों की ओर अब खुल्लमखुला वैर भाव आरंभ हो गया।

पीलीभीत की ओर जाते हुए गुरु जी करतारपुर गये, जहाँ उन्हें 'वड्डा मीर' गाँव के कुछ पठान तलवारों और ढालों से लैस मिले, जिन्होंने गुरु जी को अपनी सेवा अर्पित की। उनके साथ एक लम्बा ताकतवर जवान पैंदे खान था, जिसके माता–पिता मर चुके थे और वह अपने चाचा के पास रह रहा था। गुरु जी ने इसे अपने निजी कर्मचारी के तौर पर नियुक्त कर लिया और बड़े लाड़–प्यार से उसे और अधिक ताकत और बल बढ़ाने के लिए प्रेरित करते रहे। पैंदे खान बगैर किसी रस्से या लगाम से तेजी से दौड़े जा रहे घोड़े को काबू में कर लेता था। किसी पहलवान की हिम्मत नहीं थी कि इसके साथ कुश्ती लड़ सके।

गुरु जी सारी फौजी कसरतों का अभ्यास करते और हर प्रकार के शस्त्र इकट्ठे करके रखते थे। गुरु जी शिकार करने जाते और पैंदे खान और दूसरें लोगों की ताकत का प्रदर्शन देखते थे। गुरु जी सिखों की ओर से आई भेंटें पैंदे खान को देते थे। इसने दूसरों के दिलों में जलन और चिन्ता पैदा कर दी। सिखों का एक प्रतिनिधि मंडल भाई गुरदास जी के पास गया जिसने उन्हें बाबा बुड्ढ़ा जी के पास भेज दिया। बाबा बुड्ढ़ा जी गुरु जी के पास गये और विनती की, "आप गंगा समान हैं, सूरज की तरह और अग्नि की तरह। गंगा अनगिनत मृतक शरीरों को हड्डियों सहित अपने में समा लेती है और फिर भी पवित्र रहती है। सूरज अपनी ओर हानिकारक धूआँ खींचता है, फिर भी शुद्ध रहता है। अग्नि मृतक शरीरों को जलाती है, फिर भी पवित्र रहती है। आप इन तीनों के समान हो। आपके सिख आपका खेलों और सैनिक अभ्यासों के प्रति प्यार और उत्साह देखकर आपके लिए खतरे से चिन्तातुर हैं। सो, कृपा करके इसे त्याग दो।" गुरु जी हँसे और उत्तर दिया, "मैंने कोई अयोग्य काम नहीं किया। मैं केवल आपके द्वारा की गई भविष्यवाणी को पूरा कर रहा हूँ और सिखों की हालत को ऊपर उठा रहा है।"

गुरु जी की सुपुत्री बीबी वीरो के विवाह की तैयारियाँ की गई थीं और मिठाइयाँ तैयार करके एक कमरे में संभालकर रख दी गई थीं। सिखों की एक टोली पश्चिम की ओर से गुरु जी के दर्शन करने और भेंटें अर्पित करने के लिए आई। वे थके हारे और भूखे–प्यासे देर रात को पहुँचे जब लंगर बन्द हो चुका था। गुरु जी चाहते थे कि जो मिठाइयाँ विवाह के लिए तैयार करके रखी हुई थीं, उन मिठाइयों को आए हुए सिखों को खाने के लिए दे दिया जाए। कमरे की चाबी गुरु जी की पत्नी माता दमोदरी जी के पास थी और उन्होंने मिठाइयाँ देने से इन्कार कर दिया, जब तक बारात नहीं आए और उसे खिला न दिया जाए। गुरु जी ने एक बार फिर मिठाइयाँ मांगीं। पर माता जी अपनी बात पर अडिग रहे। इस पर गुरु जी ने भविष्यवाणी की, "मेरे सिख मुझे जान से प्यारे हैं। अगर उन्हें पहले मिठाई खिलाई जाती तो विवाह के सारे विघ्न दूर हो जाते। पर अब मुसलमान आएँगे, मिठाइयाँ ले जाएँगे और विवाह में बाधा पड़ेगी।" यह भविष्यवाणी सच सिद्ध हुई थी। इतने में एक सिख मिठाई लेकर आया था, जो गुरु जी के दर्शनों के लिए आए सिखों को खिलाई गई।

बादशाह शाहजहाँ लाहौर से अमृतसर की ओर शिकार खेलने गया। गुरु जी भी उसी दिशा में गये हुए थे।[4] सिखों और शाही फौजों के बीच एक शाही बाज को लेकर आमना–सामना हो गया। एक शाही बाज एक शिकार के पीछे उड़ता हुआ रास्ता भूल गया और सिखों के हाथ में आ गया। शाही फौजी बाज लेने के लिए आए तो उनकी अकड़ और बदज़बानी को देखकर सिखों ने बाज देने से मना कर दिया और इस पर झगड़ा शुरू हो गया। शाही फौजियों में से कुछ मारे गये और बाकी भगा दिये गये। वे जल्दी ही बादशाह के पास गये और सारा हाल उन्हें जा सुनाया। गुरु जी के दुश्मनों को मौका मिला, फिर से गुरु जी के विरुद्ध आरोप लगाने और बादशाह को गुरु जी के कथित गलत कामों के बारे में याद दिलाने का।

बादशाह ने अपने विश्वसनीय जरनैल मुखलिस खान को सात हजार फौजियों के साथ सिखों को सजा देने के लिए भेजा। इस फौजी धावे के बारे में सुनते ही लाहौर के सिखों ने तुरन्त एक आदमी गुरु जी को खबर करने के लिए भेजा। गुरु जी के महल में सुपुत्री के विवाह के कारण खूब खुशियाँ मनाई जा रही थीं। गुरु जी के परिवार को झटपट रामसर के करीब एक मकान में भेज दिया गया। अगले दिन बहुत सवेरे ही परिवार को गोइंदवाल भेज देने का फैसला हुआ। संयोग से अगले दिन ही बीबी वीरों का विवाह नियत किया हुआ था। सो, गुरु जी ने हुक्म दिया कि उनका परिवार और शहर के सब लोग जिन्होंने

लड़ाई नहीं लड़नी, अमृतसर से दक्खिन–पश्चिम की ओर करीब सात मील दूर नगर झबाल में जाकर रुक जाएँ और विवाह का कार्य वहाँ पूरा करके फिर गोइंदवाल चले जाएँ। दो सिख बारात को रोकने के लिए भेजे गये ताकि वे शत्रुओं के हाथों में न आ जाएँ।

अमृतसर शहर से बाहर लोहगढ़ नाम का एक छोटा किला था। यह एक तरह का ऊँचा चबूतरा था (एक मीनार का काम देने के लिए), जहाँ गुरु जी दोपहर बाद अपना दरबार लगाते। उसके इर्द–गिर्द ऊँची दीवारें थी। वहाँ पच्चीस सिख हमला होने के ख़्याल से नियुक्त किये गये। गुरु जी हरिमंदर साहिब गये और फतह की बख़्शीश के लिए अरदास की। उन्होंने ये तुकें पढ़ीं :

"दूत दुसमन सभि तुझते निवरहि प्रगट प्रतापु तुमारा।
जो जो तेरे भगत दुखाए ओ ततकाल तुम मारा।"

(धनासरी महल्ला 5, पृष्ठ 681)

लोहगढ़ में नियुक्त किए गये सिख हालांकि बड़े बहादुर थे, पर मुगल फौज को रोकने के लिए बहुत कम थे। सैकड़ों दुश्मन फौजियों को मारकर ये गुरु जी के उद्देश्य के लिए शहीद हो गये। शत्रु की फौजें गुरु जी के महल की ओर बढ़ीं, पर वहाँ कोई नहीं था। गुस्से में उन्होंने सारी जगह छान मारी और विवाह के लिए रखी गई मिठाइयाँ पेटभर कर खाईं। दिन चढ़ने पर लड़ाई शुरू हुई। तलवारें और गोलियाँ खूब चलीं। बहादुर जवान शहीद हुए, लहू की धारें बहने लगीं, लाशों के एक–दूसरे के ऊपर ढेर लग गये, सिर, धड़, बांहें अलग–अलग हो गये और सवारों के बिना धोड़े बेसहारा होकर शहर के आसपास दौड़ने लगे।

भाई भानूं गुरु जी की फौज का मुख्य सेनापति था और शम्स खान मुगल फौजों का एक जरनैल। शम्स खान का घोड़ा मारा गया तो भाई भानूं भी अपने घोड़े पर से उतर आया और दोनों में आमने–सामने हाथ से युद्ध होने लगा। भाई भानूं ने शम्स खान से कहा, "मैं तुझे अब बचकर भागने नहीं दूंगा।" शम्स खान ने उत्तर दिया, "बचा अपने आप को, मैं वार करने लगा हूँ।" भाई भानूं ने तलवार का वार अपनी ढाल पर लिया और अपना सारा जोर लगाकर एक ही वार में शम्स खान का सिर काट दिया। मुसलमान फौजें अपने कमांडर का कत्ल देखकर भाई भानूं की तरफ तेजी से बढ़ीं और उसे चारों ओर से घेर लिया। उसने फौजियों को गाजरों की भाँति काट डाला। आखिर में, दो गोलियाँ भाई भानूं के शरीर में आ लगीं, जो उसके शरीर में से पार निकल गईं और गुरु जी की फौज का यह बहादुर सेनापति अकाल पुरुख के चरणों में जा बिराजा।

भाई बिधी चंद, पैंदे खान और भाई जती मल्ल मुसलमान फौजों के छक्के छुड़ा रहे थे। उन्होंने अपने नेजों से शत्रु के घोड़ों को बेसवार कर दिया। गुरु जी भी बड़ी बहादुरी के साथ लड़े और उनके हाथों घायल हुए दुश्मन के फौजी गिरकर पानी मांगने लायक भी नहीं रहे। पैंदे खान लड़ते हुए बराबर सफल हो रहा था। उसने मुखलिस खान के निजी सहायकों में से आखिरी दीदार अली को भी धूल चटा दी।

मुखलिस खान अब अकेला रह गया था और उसने सोचा कि अब उसके पास गुरु जी से लड़ने के सिवा कुछ नहीं रह गया। सो, उसने गुरु जी को ललकारा, "आओ, तुम और मैं दो हाथ करके जंग का फैसला करें और दूसरा कोई करीब न आए।" उसे खुश करने के लिए गुरु जी ने अपने योद्धाओं को एक ओर खड़े रहने के लिए कहा। फिर, गुरु जी ने एक तीर मारा, जिससे मुखलिस खान का घोड़ा मर गया। गुरु जी भी अपने घोड़े पर से उतर आए और बोले, "मुखलिस खान, दिखा अपना जौहर और पहला वार कर ले।" मुखलिस खान ने वार किया जिसे गुरु जी ने तुरन्त दूर हटकर बचा लिया। अगला वार गुरु जी की ढाल पर लगा। तब गुरु जी ने ललकारा, "तूने दो वार कर लिए हैं, जिन्हें मैंने बचा लिया है। अब मेरी बारी है।" यह कहकर गुरु जी ने अपनी शक्तिशाली बांह उठाकर भरपूर वार किया जिससे मुखलिस खान का सिर दोफाड़ हो गया।

पैंदे खान, भाई बिधी चंद और भाई जती मल्ल ने वैरी फौजियों की लाशों के ढेर लगा दिए। बहुत सारे फौजी तो बिना पीछे देखे भाग खड़े हुए। इस प्रकार, गुरु जी की पूरी फतह हई और खुशियों भरे जीत के नगाड़े बजाये गये। यह युद्ध सन् 1628 में हुआ (कुछ लोग इसे सन 1634 बताते हैं)। यह युद्ध

अमृतसर के दक्षिण की ओर करीब चार मील तक फैल गया था और गुरु जी की इस फतह की याद में संगराना नाम की एक धर्मशाला बनाई गई। इस स्थान पर हर साल एक मेला लगता है।

शहीद हुए अपने योद्धा सैनिकों का अन्तिम संस्कार करने के बाद गुरु जी झबाल गये और अपनी सुपुत्री का विवाह किया।

श्री हर गोबिंदपुर शहर का शिलान्यास और दूसरा युद्ध :

मुखलिस खान की मौत और अपने फौजों की हार की खबर सुनकर शाहजहाँ ने अपने मुखियों की एक सभा बुलाई जिसमें फैसला किया गया कि गुरु जी को गिरफ्तार किया जाए या मार दिया जाए, ताकि वह बादशाही राज्य की बागडोर न संभाल सकें। गुरु जी के श्रद्धालू वज़ीर खान ने गुरु जी के पक्ष में सफाई पेश की और कहा, "सरकार, गुरु साहिब कोई बागी नहीं और ना ही उसकी आपकी सल्तनत को कब्जे में करने की कोई इच्छा है। अगर उसे ऐसी कोई चाहत होती तो वह अपनी फतह के साथ–साथ कुछ किलों पर भी कब्ज़ा कर लेता, कोई इलाका अपने कब्ज़े में ले लेता या शाही खजाना लूट लेता। क्या यह कमाल नहीं है कि गुरु जी ने सात सौ जवानों के साथ सात हजार की शाही फौज को तबाह कर दिया।"

वज़ीर खान की ऐसी बहुत सारी दलीलों की पुष्टि शाही दरबार में गुरु जी के लिए मैत्रीभाव रखने वालों ने की। बादशाह को यकीन हो गया और वह जो हो गया, उसे भूल जाने को राजी हो गया। युद्ध के बाद गुरु जी करतारपुर गये। पैंदे खान के बारे में उन्हें जल्द ही चिन्ता सताने लगी क्योंकि उसने शेखी बधारना शुरू कर दिया था, "मैं ही था जिसने अमृतसर में गुरु साहिब के विरुद्ध अनगिनत फौजों को तबाह किया। मैंने अपने तीरों से दुश्मनों को मार कर पंछियों की भाँति सीखों में पिरो दिया। मैं वहाँ न होता तो किसी का साहस शाही फौजों से सामना करने का न होता। गुरु साहिब के सिखों में भगदड़ मच जाती।" गुरु जी ने यह सब सुना। पैंदे खान जो सारा दिन गुरु जी की सेवा में रहता था और रात में सोने के लिए ही अपने ठिकाने पर जाता था, को गुरु जी ने हुक्म दिया कि वह अपने ठिकाने पर ही रहा करे और गुरु जी के पास कभी–कभी ही आया करे। यह पैंदे खान को गुरु जी की ओर से एक चेतावनी थी, उसके द्वारा शेखियाँ बघारने की एवज में। यह बरसात का मौसम था और गुरु जी ब्यास नदी पार करने के बाद नदी के किनारे के दायीं ओर चल पड़े, जो ऊँचाई पर था। उन्होंने देखा कि रिहायश वाले घर केवल एक ओर ही हैं और बाकी जमीन पूरी खाली है। यह जमीन गुरु जी को एक नगर बसाने के लिए अच्छी लगी। लोगों ने गुरु जी का खुले दिल से स्वागत किया, पर जमींदार और इलाके का चौधरी भगवान दास घेरड़ गुरु जी के हक में नहीं था। घेरड़ ने गुरु जी के विरुद्ध वैरभाव शुरू कर दिया और एक अवसर पर गुरु जी के खिलाफ बुरे शब्द भी कहे। इस पर गुरु जी के सिखों और घेरड़ के आदमियों में लड़ाई छिड़ गई जिसमें घेरड़ मारा गया।

लोगों की शुभकामनाएँ मिल जाने पर गुरु जी ने नगर के लिए तैयारियाँ शुरू कर दीं। जमीन में पहला कट गुरु जी ने लगाया और पड़ोस के गाँवों से राज मिस्त्री और मज़दूर बुला भेजे। बाद में नगर का नाम श्री हर गोबिंदपुर रखा गया, गुरु जी के सम्मान में।

घेरड़ के बेटे रतन चंद ने अपने बाप की मौत का बदला लेने की सौगन्ध खाई। वह चंदू के पुत्र करम चंद के पास गया और उसे अपने साझे अत्याचारी (गुरु जी) के विरुद्ध साथ देने के लिए जोर डाला। फिर दोनों जालंधर के सूबेदार अब्दुला खान के पास गये। रतन चंद ने अपना रोना रोया और सलाह दी कि बादशाह बहुत खुश होगा अगर सूबेदार गुरु जी को पकड़कर बादशाह के सुपुर्द करे। इससे सूबेदार को तरक्की भी मिलेगी।

सूबेदार और उसके सलाहकार रतन चंद की दलीलों पर यकीन करके मान गये और झटपट गुरु जी के विरुद्ध एक मुहिम की योजना भी बना ली और तैयारी शुरू कर दी। जब गुरु जी को इस चढ़ाई के बारे में खबर मिली तो उन्होंने कहा, "अकाल पुरुख को जो अच्छा लगता है, वही ठीक है।" सूबेदार की दस हजार की फौज थी। उसने फौज को आठ हिस्सों में बांटा, पाँच अपने जरनैलों के अधीन, दो को अपने बेटों

के और दो को अपने अधीन रखा। गुरु जी ने अपनी फौजों की कमान भाई जत्तू, भाई बिधी चंद, भाई सती मल्ल, भाई मथुरा, भाई जगन नाथ, भाई नानो और अन्य लोंगों को दी।

गुरु जी की कृपादृष्टि के कारण सिख जो खरगोशों की भाँति निर्बल थे, अब शेरों की तरह ताकतवर हो गये। उनका जन्म और पिछला कार्य–व्यवहार चाहे जैसा भी था, उन्होंने युद्ध के मैदान में अपने आप को शानदार शूरवीर होने का सबूत दिया। जब अब्दुला के सभी जरनैल लड़ाई में मारे गये तो उसने जीतने या मर जाने का इरादा किया। करम चंद, रतन चंद और अब्दुला तीनों गुरु जी पर वार करने के लिए आए। गुरु जी ने करम चंद और रतन चंद से पूछा, "तुम क्या सोच रहे हो ? अब लो अपने बापुओं का बदला। बुजदिलों की तरह भाग न जाना। बहादुर बनो और आओ मेरे सामने, नहीं तो जाओ जहाँ तुम्हारे बाप गये हैं।" गुरु जी ने करम चंद के सिर पर अपनी ढाल मारी और वह लड़खड़ाकर बेहोश होकर गिर पड़ा। रतन चंद उसकी सहायता के लिए दौड़ा। गुरु जी ने पिस्तौल निकाला और उस पर गोली दाग दी। अब्दुला ने थोड़े से वार किए जिन्हें गुरु जी ने अपनी ढाल पर ले लिया। फिर पूरा जोर लगाकर गुरु जी ने अपनी कटार से सूबेदार पर वार किया और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। उसी समय, करम चंद होश में आ गया और वह तेजी के साथ गुरु जी की ओर बढ़ा। दोनों के बीच अच्छी–खासी तलवार बाजी हुई और फिर करम चंद की तलवार टूट गई। गुरु जी महापुरुष थे और अपने वैरी की इस हालत का कोई लाभ नहीं लेना चाहते थे। गुरु जी ने अपनी तलवार म्यान में रख ली और करम चंद से कुश्ती की तरह भिड़ पड़े। आखिर, गुरु जी ने उसे दोनों बांहों से पकड़कर घुमाया और उसका सिर धरती पर पटककर दे मारा। सूबेदार और उसके सभी जरनैल मारे गये थे और उसकी फौज भाग गई थी। सो, जंग का अन्त हुआ और फतह ने गुरु जी के चरण चूमे।

तीसरा युद्ध :

दो मसन्द बख्त मल और तारा चन्द काबुल में गुरु जी के लिए धन एकत्र करने के लिए भेजे गये। वे सिखों की एक टोली के साथ गुरु जी के लिए भेंट का सामान और दो अति सुन्दर और अच्छी चाल वाले घोड़े– दिलबाग और गुलबाग– लेकर लौट रहे थे। इन दोनों घोड़ों को बादशाह के अफसरों ने छीन लिया और उन्हें बादशाह को भेंट कर दिया। सिखों को घोड़ों के छिन जाने का बड़ा दुख हुआ, क्योंकि वे ये घोड़े गुरु जी के लिए ला रहे थे। भाई बिधी चंद गुरु अर्जन देव जी की सेवा में लग जाने से पहले एक बड़ा प्रसिद्ध लुटेरा और डाकू था और उसकी लूटमार और डाके सरकारी कागजों में दर्ज थे। फिर, वह यह काम छोड़कर गुरु जी का सिख बन गया। सिखों ने सोचा कि जिस तरह दिलबाग और गुलबाग जैसे दूसरे घोड़े संसार भर में नहीं हैं, इसी तरह बिधी चंद जैसा कोई दूसरा नहीं जो घोड़ों को वापस ले आए। आखिर, बिधी चंद ने यह काम करने का फैसला कर लिया। वह तैयार हुआ और अरदास करके घोड़े वापस लाने के लिए लाहौर चला गया। लाहौर में जीवन नाम का एक बढ़ई सिख रहता था, बिधी चंद उसके पास ठहर गया।

बिधी चंद ने एक घसियारे का काम शुरू किया। उसने बहुत अच्छा नरम घास काटा और गठरी बांध मंडी में ले गया। घास बहुत अच्छा था और बिधी चंद इसके लिए दाम भी बहुत मांग रहा था। आखिर, वह सौधा खान के पास पहुँचा जो शाही अस्तबल का रखवाला था। घास को देखते ही उसने कहा कि उसने ऐसा अच्छा घास आज से पहले कभी नहीं देखा। यह दिलबाग और गुलबाग घोड़ों के लायक था। सो, उसने अपने आदमियों को हुक्म दिया कि भाव ठीक करके वे इसे खरीद लें। सौधा खान बिधी चंद को घास की गठरी उठवाकर अपने संग उस स्थान पर ले गया, जहाँ दोनों घोड़े बांधे हुए थे। घोड़ों ने घास पेटभर कर यूँ खाया मानो वे दिनभर भूखे रहे हों। बिधी चंद ने इस काम को कई दिनों तक जारी रखा। आखिर, वह बादशाह के इन प्रसिद्ध घोड़ो के लिए एक रुपया रोज पर घसियारे के तौर पर नियुक्त हो गया। उसने इतनी मेहनत से काम किया और इतनी शराफत और मीठी ज़बान में बात की कि सौधा खान ने उसे धोड़ों पर काठी डालने और उतारने का काम सौंप दिया। एक बार बादशाह घोड़ों को देखने आया और घोड़ों की बहुत अच्छी हालत देखकर बेहद खुश हुआ और इसके लिए उसने बिधी चंद की प्रशंसा की।

एक दिन साथी नौकरों में से एक नौकर ने बिधी चंद से कहा कि वह सभी साथियों से अधिक तनख्वाह लेता है, पर उसने कभी इसका जश्न नहीं मनाया। बिधी चंद मान गया और बाजार जाकर तेज शराब ले आया। रात के खाने का प्रबंध किया गया। उसने साथियों को इतनी अधिक मात्रा में तेज शराब पिला दी कि वे सब रात भर के लिए बेहोश हो गये। इस तरह, बिधी चंद को अपने काम के लिए पूरी छूट मिल गई। उसने दिलबाग पर सवार होकर चाबुक लगाई और घोड़े का मुँह किले की दीवार की ओर कर लिया, जहाँ से वह घोड़े को छलांग लगवाना चाहता था। घोड़े को अभी तक किसी ने इस्तेमाल नहीं किया था, सो वह चाबुक लगने और इस अनौखे हुक्म पर उत्तेजित हो उठा और पूरा जोर लगाकर बिना किसी झिझक के उसने छलांग लगा दी। वह अपने सवार सहित ऊँची दीवार फलांग कर किले के साथ बहते दरिया में कूद गया (दरिया किले के अस्तबल वाली दिशा में दीवार से लगकर बह रहा था)। बिधी चंद घुड़सवारी का माहिर था, वह घोड़े को पानी के बीच सम्भालते हुए दूसरे किनारे पर ठीकठाक ले आया। वहाँ से वह 'भाई रूपा' नामक गाँव में पहुँचा जहाँ गुरु जी ठहरे हुए थे।

सिखों ने देखा कि दिलबाग दाना पूरी तरह नहीं खा रहा था और अपने साथी गुलबाग की जुदाई को महसूस कर रहा था। सो, बिधी चंद गुलबाग को भी लाने के लिए चल पड़ा। जब वह लाहौर पहुँचा, उसने सुना कि दिलबाग को ढूँढ़कर लाने वाले को इनाम मिलेगा। उसने अपनी शक्ल–सूरत और कपड़े बदलकर नया भेस धारण कर लिया और किले के द्वार पर जा पहुँचा। वहाँ उसने बताया कि "वह एक अनुभवी खोजी है और ज्योतिषी भी। वह किसी भी खोई हुई चीज का पता लगा सकता है।" बिधी चंद जिसका नकली नाम गनक था, को जब बादशाह के सामने पेश किया गया तो वह उसे विश्वास दिलाने में सफल हो गया कि वह शगुन–अपशगुन पहचानने, खोई हुई वस्तु का पता लगाने और सितारों तथा ग्रहों को पढ़ने में माहिर है। बादशाह ने इकरार किया कि अगर वह बता सके कि चोरी हो गया घोड़ा कहाँ है, तो उसे लाखों रुपयों का इनाम दिया जाएगा। बिधी चंद ने बादशाह को उत्तर दिया, "मुझे मालूम है कि वह घोड़ा कहाँ है, पर मैं वह जगह देखना चाहूँगा, जहाँ से वह घोड़ा चुराया गया था। फिर मैं आपको सबकुछ बता दूँगा।"

इस पर बादशाह अपने अहलकार सहित, बिधी चंद को अस्तबल में ले गया। कुछेक ने बादशाह को एक अजनबी पर भरोसा करने से रोकने की कोशिश की, लेकिन वह नहीं माना।

बिधी चंद की सलाह के अनुसार अस्तबल में सभी घोड़ों पर काठियाँ कसी गईं, पूरे एकान्त और शान्ति के लिए आदेश दिया गया और किले में रहने वालों के आने–जाने पर रोक लगा दी गई। यह सबकुछ इसलिए कि बिधी चंद पूरी शान्ति में बैठकर हिसाब–किताब लगा सके। मैकालफ के लिखे अनुसार, भाई बिधी चंद ने बादशाह से कहा, "पूरी बात सुनो, चोर को भुला देने वाला व्यक्ति न समझो। आपके पिता ने अपनी फौजी ताकत के बल पर इससे पहले एक बहुत ही बढ़िया घोड़ा अपने कब्जे में कर लिया था, जो कि इलाही और पूज्यनीय गुरु हर गोबिंद साहिब के लिए था, जिस गुरु की महिमा सूर्य की भाँति है। और अब आपने अपने अन्यायी पिता की तरह इन दो घोड़ों को छीन रखा है, जिन्हें नेक सिख अपने प्रिय गुरु जी के लिए लाए थे। मैंने बदला चुका दिया है और अपनी सूझबूझ से पहला घोड़ा ले लिया है। मेरा नाम बिधी चंद है, मैं गुरु जी का चाकर हूँ। मैं ही था जो दिलबाग को उसके घर ले गया था, जिसे अब आप ढूँढ़ रहे हैं। अपने साथी की जुदाई के कारण दिलबाग वहाँ पहुँचकर रोया था और उसे बड़ी मुश्किल से खाने–पीने के लिए मनाया गया है। इसलिए मैं खोई हुई वस्तु को खोजने वाले व्यक्ति का भेश धारण करके, बेज़बान पशुओं में प्यार होने के कारण दिलबाग के साथी को उससे मिला देने की खातिर यहाँ आया हूँ। मैं ही चोर हूँ, सच्चा पातशाह मेरा मालिक है। आपने अब मुझे गुलबाग काठी सहित तैयार करके दिया है। मैंने आपके दरबार की सूझबूझ को पूरी तरह जान लिया है। मैं आपको बता रहा हूँ कि पहला घोड़ा कहाँ है और यह बताकर अपने सिर पर से बोझ उतार रहा हूँ। गुरु जी ने भाई रूपा नाम के नये बसाये गये नगर में अपना डेरा लगाया हुआ है। समझ लो कि दिलबाग वहाँ खड़ा है। गुलबाग अब जाकर उससे मिल जाएगा।"[5]

इस पर भाई बिधी चंद ने खूँटे से बंधे रस्से खोले और घोड़े को सरपट दौड़ाकर भाई रूपा नगर में ले गया, जहाँ गुरु जी ठहरे हुए थे। दिलबाग का नाम बदलकर 'जन भाई' (जीवन की तरह प्यारा) और गुलबाग को सहेला (साथी) कहकर बुलाने लगे थे। इस सारी घटना पर बादशाह को बड़ा क्रोध आया और

उसने पूछा, "है कोई बहादुर आदमी जो गुरु जी के विरुद्ध मुहिम पर जाए ?" लाला बेग, शाही फौज का एक उच्च अफसर उठा और उसने कहा कि वह गुरु के विरुद्ध मुहिम की अगुवाई करेगा और चोरी किए गऐ दोनों घोड़े कुछ ही दिनों में बादशाह के सामने पेश करेगा। लाला बेग के

भाई कमरबेग के साथ–साथ उसके दोनों बेटों– कासम बेग और शम्स बेग, और भतीजे काबुली बेग ने भी इस मुहिम के लिए अपने आप को पेश किया। लाला बेग और उसके साथियों को पैंतीस हजार घुड़सवार और पैदल शाही फौज की कमान सौंपी गई। इस पूरी फौज ने रूपा नगर की ओर चढ़ाई की और गुरु जी को वहाँ न पाकर, उनके नये मुख्य स्थान 'लहिरा' जो भाई रूपा नगर से कुछ ही मील दूर था, की ओर कूच कर गई। गुरु जी ने यह स्थान इसलिए चुना, क्योंकि यह किसी नगर से जुड़ा हुआ नहीं था, जहाँ शत्रु की फौजों को राशन और युद्ध की अन्य आवश्यक वस्तुएँ मिल सकतीं और यहाँ पीने वाले पानी का एकमात्र कुआँ था, जो गुरु जी के फौजों की सुरक्षा में था। गुरु जी की फौजों की कमान भाई बिधी चंद, भाई जेठा, भाई जती मल्ल और भाई राय जोध के हाथ में थी और करीब चार हजार सिपाही थे।

राय जोध एक हजार सिपाहियों के साथ कमर बेग से मुकाबला करने गया। गोलियों की वर्षा ने शाही फौजों की गिनती पतली कर दी। उन्होंने अपनी तलवारों और तोपों से काम लिया। गुरु जी की फौजों ने दुश्मन की फौजों की तबाही मचा दी। राय जोध ने एक मौका देखकर कमर बेग को बुरी तरह बींध डाला, जो गिरकर जल्दी ही मर गया। अपनी फौजों के कमांडरों का कत्ल होते और फौजों के हौसले पस्त होते देखकर लाला बेग स्वयं तेजी से भाई जती मल्ल की ओर बढ़ा और एक तीर चलाया जो जती मल्ल की छाती में लगा और वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। गुरु जी जती मल्ल को गिरते देखकर खुद युद्ध क्षेत्र में आए और लाला बेग को अपनी ताकत आजमाने के लिए ललकारा। गुरु जी ने लाला बेग के घोड़े पर गोली चलाई और उसे अपने सवार सहित गिरा दिया। गुरु जी भी अपने घोड़े से नीचे उतरे ताकि गिरे हुए दुश्मन के विरुद्ध नाजायज लाभ न उठा सकें। लाला बेग ने उठकर तलवार के कई वार गुरु जी पर किये, जिनसे गुरु जी ने खुद का बचा लिया। फिर अपना पूरा जोर लगाकर एक भरपूर वार उन्होंने लाला बेग पर किया और उसका सिर धड़ से अलग हो गया। काबुली बेग ने उछल कर गुरु जी पर हमला किया। उसने बार–बार गुरु जी पर वार किये। जब गुरु जी ने अपने आप को उसके हर वार से बचा लिया, तब गुरु जी ने उसे ललकारा, "अब मेरी बारी है, अपना बचाव कर।" गुरु जी ने उस पर ऐसा जोरदार वार किया कि उसका सिर कट कर गिर पड़ा। इससे युद्ध का अन्त हो गया। शाही फौज के बच रहे सिपाही अपनी जानें बचाने के लिए भाग खड़े हुए। गुरु जी की फौज के बारह सौ सिपाही मारे गये या ज़ख्मी हुए।

यह युद्ध 16 माघ सम्वत् 1688 अर्थात सन् 1631(कई यह युद्ध 1634 में हुआ बताते हैं) को आधी रात के समय आरंभ हुआ था और अट्ठारह घंटे चलता रहा। गुरु जी ने भाई बिधी चंद, भाई जती मल्ल और भाई जोध राय की बहादुरी की बहुत प्रशंसा की। इस फतह की याद में उस स्थान पर गुरुसर सरोवर बनाया गया।

चौथा और अन्तिम युद्ध :

गुरु जी कुछ आराम करने के लिए कंगड़ चल गये और शीघ्र ही, वापस करतारपुर आ गये। कुछ समय बाद सिखों और मुगलों के बीच एक युद्ध छिड़ गया। इसका कारण पैंदे खान था। वह जालंधर के सूबेदार कुतबखान के पास गया और उसे साथ लेकर बादशाह के पास पहुँचा। दोनों ने बादशाह को बरगलाया कि वह एक तगड़ी फौज गुरु जी पर धावा करने के लिए भेजे। मुखलिस खान के भाई काले खान को पचास हजार फौजियों की कमान सौंपी गई। कुतब खान, पैंदे खान, अनवर खान और असमान खान को काले खान के अधीन लड़ने के लिए नियुक्त किया गया।

भाई बिधी चंद, भाई जती मल्ल, भाई लक्खू और भाई राय जोध ने अपनी फौजें करतारपुर के चारों ओर तैनात कर लीं। शाही फौजों के सेना प्रमुख इनकी ओर बढ़े। लेकिन पठान, बहादुर सिखों जो कि अपने धर्म और गुरु जी की खातिर लड़ रहे थे, की बहादुरी के सामने खड़े न हो सके। बिधी चंद काले खान से जूझा और गुरु जी का सबसे बड़ा सुपुत्र बाबा गुरदिता, असमान खान के साथ। यहाँ तक

कि तेग बहादुर (जो बाद में चलकर नौंवे गुरु जी बने) जो केवल अट्ठारह वर्ष की उम्र के थे, ने भी युद्धक्षेत्र में बहादुरी के जौहर दिखाये। पैंदे खान तलवार लेकर गुरु जी का सामना करने गया और उनकी ओर अपमानजनक शब्द बोला। उस समय के एक मुसलमान साहित्यकार मुहसन फानी के लिखे अनुसार गुरु जी ने पैंदे खान से कहा, "पैंदे खान! ऐसे शब्द क्यों इस्तेमाल कर रहा है जब कि तलवार तेरे हाथ में है। मेरे बच्चे जिस तरह का बहादुर तू है, आ मैं तुझे पहला वार करने की छूट देता हूँ। मुझे तेरे से कोई गिला नहीं। पर तू गुस्से में भरा हुआ है। तू पहले वार करके गुस्सा निकाल ले।"

पैंदे खान ने गुरु जी पर एक भारी वार किया, पर उन्होंने उसे रोक लिया। पैंदे खान को एक बार और कोशिश करने को कहा, पर वह सफल न हुआ। दो वार खाली चले जाने पर वह गुस्से में पागल हो उठा और उसने क्रोध में आकर तीसरा वार किया, पर गुरु जी ने उसे भी बचा लिया। उन्होंने तब उसे जोर देकर कहा, "ले भाई, मैं तुझे सिखाता हूँ, इस तरह वार करना है। तेरी तरह नहीं, बल्कि इस तरहकृ" यह कहते हुए गुरु जी ने उस पर इतना तगड़ा वार किया कि वह बुरी तरह ज़ख्मी होकर जमीन पर गिर पड़ा। इस वार से पैंदे खान के दिल में गुरु जी के लिए फिर से पुरानी श्रद्धा उमड़ आई। गुरु जी ने कहा, "तू एक मुसलमान है। अब समय है, आखिरी दम कलमा पढ़ ले।" पैंदे खान ने उत्तर दिया, "गुरु जी आपकी तलवार ही मेरा कलमा और मेरी मुक्ति का रास्ता है।" गुरु जी उसे प्राण त्यागते हुए देखकर दया से भर उठे और उसके ऊपर पड़ती धूप से उसे बचाने के लिए उन्होंने अपनी ढाल तानकर कहा, "पैंदे खान, मैंने तुझे प्यार किया, पाला–पोसा और तुझे शूरवीर बनाया। हालांकि लोग तुझे बुरा कहते थे, मैंने तेरी कमजोरियों को भुला दिया और मेरे मन में कभी तेरे विरुद्ध बुरी भावना नहीं आई, लेकिन बुरी किस्मत ने तुझे इस कदर पथभृष्ट कर डाला कि तू मेरे विरुद्ध एक फौज ले आया। ये तेरे नाशुक्रगुजारी और गुस्ताखी वाले काम हैं जिन्होंने तेरी मौत मेरे हाथों करवाई। बेशक तू नाशुक्रगुजार और नमकहराम रहा है, मैं सर्व–शक्तिमान प्रभु से अरदास करता हूँ कि तुझे बिहिश्त में जगह दे।"

जब उसके सभी मुख्य अफसर मारे गये तो काले खान गुरु जी का मुकाबला करने आया। उसने एक तीर चलाया जो 'सांय–सांय' करता हुआ गुरु जी के पास से निकल गया। एक दूसरा तीर गुरु जी के माथे को छूकर निकल गया और लहू की बूंदे गुरु जी के चेहरे पर पड़ गईं। गुरु जी ने आवाज दी, "काले खान, मैंने तेरा हुनर देख लिया है। अब तू मेरा देख।" गुरु जी ने एक तीर चलाया जिससे काले खान का घोड़ा मर गया। गुरु जी ने सोचा, यह मेरे लिए मान की बात है कि मैं ही घोड़े से नीचे उतर जाऊँ और दुश्मन को शस्त्र चुन लेने का अवसर दूँ। तलवार से तलवार भिड़ने पर आग की चिंगारियाँ निकलने लगीं। गुरु जी ने उसके सभी वार बचा लिए और कहा, "ऐसे नहीं, तलवार चलाने का तरीका इस तरह है।" और साथ ही, अपनी दोधारी तलवार से ऐसा जोरदार वार किया कि काले खान का सिर धड़ से अलग होकर जमीन पर जा गिरा। इस पर शाही फौजें अपनी जान बचाने के लिए भाग खड़ी हुईं। बिधी चंद और जती मल्ल ने विजय के नारे लगाये।

कहा जाता है कि इस युद्ध में हजारों ही मुसलमान मारे गये थे जबकि गुरु जी के केवल सात सौ बहादुर सिखों की जाने गईं। यह युद्ध 24 आषाढ़ सम्वत् 1691 (सन् 1634 ई.) को समाप्त हुआ।

गुरु हर गोबिंद साहिब ने इस तरह चार युद्ध लड़े और जीते। क्योंकि गुरु जी का मंतव्य केवल अपनी ओर का बचाव करना ही होता था, उन्होंने उनके इलाके की एक इंच जगह पर भी कब्ज़ा नहीं किया। पर इसने सिखों के चरित्र में भारी परिवर्तन ला दिया, जिन्होंने अब भजनमाला के साथ–साथ कमरकस्से (कमर में बांधने वाला पटका) कस लिए और अपने धर्म की रक्षा के लिए तलवारें पहन लीं। देश में मुगल राज्य की बलशाली और अन्यायपूर्ण शक्ति जो गैर मुस्लिम रियाया के साथ धार्मिक पक्षपात का व्यवहार करने लग पड़ी थी, को रोकने के लिए बहादुरी की एक नई रूह पैदा हो गई। गुरु जी सिखों के लिए केवल एक ईश्वरीय सन्देश लाने वाले ही नहीं, बल्कि तलवार के धनी एक योद्धा और युद्ध के पूर्ण माहिर भी बन गये थे।

प्रचार के लिए सफ़र :

गुरु नानक देव जी के बाद गुरु हर गोबिंद साहिब पहले गुरु थे जो सिख धर्म के प्रचार के लिए पंजाब से बाहर गये। उन्होंने स्थान–स्थान का सफ़र किया और उत्तर में कश्मीर और पूरब में नानकमता, पीलीभीत तक गये।

अलमस्त नाम के एक सिख जो पीलीभीत के करीब नानकमता में सिख धर्म का प्रचार करता था, को जोगियों ने उसके मंदिर से बाहर निकाल दिया था और उस पावन पीपल के वृक्ष को भी जला दिया था, जिसके नीचे बैठकर गुरु नानक देव जी ने गोरख नाथ के शिष्यों के संग शास्त्रार्थ किया था। अलमस्त रातदिन गुरबाणी का पाठ करता रहता। वह अरदास करता था, "हे अन्तर्यामी, सच्चे पातशाह, हमारी सहायता करो।" सारे कष्ट सहते हुए अलमस्त प्रतीक्षा कर रहा था कि गुरु जी आ गये और उन्होंने गुरु नानक देव जी की याद में बने मंदिर का कब्जा लेकर उसकी मरम्मत करवाई।

गुरु जी की पत्नी माता दमोदरी जी की बड़ी बहन बीबी रामो, भाई सांई दास से ब्याही हुई थी, जो वर्तमान के फिरोजपुर जिले के डरोली गाँव में रहता था। सांई दास सदा अरदास करता था कि गुरु हर गोबिंद साहिब उसके गाँव में अपने चरण रखें। उसने एक भवन बनाया हुआ था, गुरु जी की आवभगत और रिहायश के लिए और प्रण किया हुआ था कि इसमें किसी को नहीं रहने देगा, जब तक कि गुरु जी आकर अपने निवास से इसे पवित्र न करें। उसने एक सुन्दर पलंग तैयार किया और इसके सिरहाने की ओर एक छत्र लगा दिया। हर रोज वह इस कमरे में फूल चढ़ाता और अरदास करता कि गुरु जी आकर इस स्थान का उद्धार करें। बीबी रामो उसे जोर देकर कहती थी कि गुरु जी को सन्देशा भिजवा दो, पर वह कहता, "गुरु जी अन्तर्यामी हैं और अपनी रज़ा से ही आएँगे।"

अलमस्त के कष्ट और सांई दास की श्रद्धा की खातिर गुरु जी ने नानकमता और डरोली में जाने का फैसला किया और अपने साथ एक टुकड़ी अपने हथियारबंद सेवकों की ले ली। वह करतारपुर गये और वहाँ कुछ दिन रहे। उसके बाद जब वह नानकमता पहुँचे तो जोगियों ने उनके अनुचरों और परिचरों का समूह देखकर सोचा कि कोई राजा आया है। अलमस्त आगे बढ़ा और उसने शुक्र मनाया कि उसका रूहानी दाता पहुँच गया है। गुरु जी ने एक चबूतरा बनवाया और उस पर बैठकर सोदर का पाठ किया। उन्होंने पीपल के वृक्ष पर केसर छिड़का और वह फिर से हरा–भरा हो उठा।

जोगी इकट्ठा होकर आए और बोले, "आप एक गृहस्थ पुरुष हो, हम अच्छे जाने–माने पवित्र सन्यासी हैं। गोरखनाथ का नाम होने के कारण यह स्थान हमारा रहा है। सो, आप चले जाओ और जहाँ चाहो, रहो।" गुरु जी ने उत्तर दिया, "तुम पवित्र सन्यासी किसको कहते हो ? मैं यह नाम केवल उसका समझता हूँ जिसने अंहकार का त्याग किया है और परमात्मा के प्यार को अपने हृदय में बसा रखा है। केवल वही मुक्ति प्राप्त करेगा। वह मनुष्य नहीं जिसने सन्यासी वस्त्र पहन रखे हैं।"

जोगियों ने गुरु जी को डराने के लिए करामातें दिखाईं, पर गुरु जी पर उनका कोई प्रभाव न डाल सके और इस प्रकार वे लौट गये। उस दिन से इस स्थान का नाम नानकमता पड़ गया और उदासी सिखों के कब्ज़े में रहा। गुरु जी वहाँ कुछ समय रुके, अपने सिखों को उपदेश देते रहे और अलमस्त की अगुवाई के अधीन एक सिख सेवा संस्था की स्थापना की।

अपने सफ़र की वापसी पर गुरु जी डरोली गये जहाँ गुरु जी के माता जी और पत्नी उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सांई दास और उसकी पत्नी बीबी रामो ने गुरु जी से आशीर्वाद के लिए विनती की। गुरु जी ने उत्तर दिया, "जिनके हृदय पवित्र हैं, अकाल पुरुख सदा उनकी सहायता करता है। पवित्र मन से उसके पावन 'नाम' का सुमिरन करो और उसकी रज़ा में राजी रहो तो तुम खुश रहोगे।"

कार्तिक महीने की पूर्णमासी, सम्वत् 1670 (सन् 1613 ई.) का दिन था। माता दमोदरी जी ने एक सुपुत्र को जन्म दिया जिसका नाम बाद में गुरदिता रखा गया और जिसका चेहरा–मोहरा गुरु नानक देव जी से बहुत मिलता था। उसके बाद गुरु जी अमृतसर लौट आए।

सेवा दास नाम का एक ब्राह्मण जो श्रीनगर, कश्मीर में रहता था, गुरु जी का सिख बन गया था। उसकी माता भागभरी ने सूत कातकर गुरु जी के लिए एक सुन्दर–सा चोगा खुद ही तैयार किया था, ताकि गुरु जी जब आएँगे तो वह उन्हें भेंट करेगी। वह लगातार अरदास करती और गुरु जी की प्रतीक्षा करती थी। गुरु जी ने उसकी अरदासों को सुना और कश्मीर जाकर उससे मिलने का फैसला किया।

कश्मीर जाते हुए राह में सियालकोट के करीब चपरनाला पहुँचे, जहाँ उन्हें एक ब्राह्मण मिला। गुरु जी ने उससे पूछा, "पीने और स्नान करने के लिए पानी कहाँ मिलेगा ?" उसने लापरवाही से उत्तर दिया, "यह धरती पथरीली है, इसलिए यहाँ पानी नाममात्र ही है।" यह सुनकर गुरु जी ने अपना बरछा धरती में मारा। कहा जाता है कि उस स्थान से एक निर्मल पानी का चश्मा फूट पड़ा। सिखों ने उस चश्मे पर गुरुसर नाम का सरोवर बना दिया। ब्राह्मण बड़ा लज्जित हुआ और गुरु जी से क्षमा मांगने लगा कि उसने गुरु जी की महानता को नहीं पहचाना। गुरु जी ने उत्तर दिया, "जो पश्चाताप करते हैं उनके पाप बख़्शे जाएँगें।"

गुरु जी ने कश्मीर के पहाड़ों में सफ़र जारी रखा। वहाँ उन्हें एक श्रद्धालू सिख कट्टू शाह मिला जिसने गुरु जी के दर्शन अमृतसर में किये थे। गुरु जी ने उसके घर में एक रात विश्राम किया और फिर श्रीनगर की ओर चल पड़े, जहाँ सेवादास 'नाम' का सुमिरन करते हुए गुरु जी की प्रतीक्षा में था। उसकी माता जी ने कहा कि जहाँ भी गुरु जी के चरण पड़ेंगे, वह उस धरती की पूजा करेगी। गुरु जी के पहुँचने पर उन्होंने उनका बड़े सत्कार और चाव से स्वागत किया। गुरु जी ने सेवादास की माता से कहा कि, "लाओ चोगा जो आपने मेरे लिए तैयार किया है।" गुरु जी ने चोगा लेकर पहन लिया और भागभरी को आशीष दिया। गुरु जी के लिए भक्तिभाव से विह्वल हुई माई ने यह 'शबद' पढ़ा :

"ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै।
गरीब निवाजु गुसईआ मेरा माथै छतर धरै।"

(राग मारू बाणी रविदास जीउ, पृष्ठ 1106)

इसके बाद माई और पुत्र सेवादास ने गुरु जी की चरण–पाहुल (वह जल जिसमें गुरु जी ने चरण धोये) लेकर कुछ पी और बाकी की अपने घर पर छिड़क दी।

श्रीनगर और आसपास के गाँवों से कश्मीरियों ने आकर गुरु जी को श्रद्धांजलि भेंट की और बहुत सारे लोगों ने सिख धर्म धारण कर लिया। एक बहुत रोचक कहानी : सिखों की एक टोली एक बहुत दूर के गाँव से गुरु जी के दर्शन के लिए आई, शहद भेंट करने के लिए। राह में उन्हें कट्टू शाह मिला जिसने उनसे कुछ शहद देने की विनती की, पर उन्होंने यह कहकर नहीं दिया कि वे यह शहद गुरु जी को भेंट करने के लिए ले जा रहे हैं, और बचा हुआ शहद भेंट करने वाला नहीं रहेगा। जब सिख गुरु जी के पास पहुँचे तो देखा कि सारा शहद खराब हो गया था और कीड़ों से भर गया था। गुरु जी ने कहा, "यह मेरे सिख जिसमें गुरु जी की रूह बसती है, को न देने का परिणाम है।" गुरु जी ने उन सिखों को आदेश दिया कि वापस जाओ और कट्टू शाह की तसल्ली कराओ। कहा जाता है कि जब वे कट्टू शाह के पास पहुँचे तो शहद ताजा और मीठा हो गया। "एक भूखा मुँह गुरु जी की गोलक है।"

गुरु जी बारामूला के रास्ते पंजाब को वापस लौट पड़े। अगले दिन गुरु जी उस स्थान पर पहुँचे जहाँ ऋषि कश्यप रहता था और जहाँ, बताते हैं कि विष्णु ने एक बौने का रूप धारण किया था। फिर गुरु जी पंजाब से गुजरात की ओर चल पड़े, जहाँ वह शहर के महात्मा शाह दौला से मिले। शाह दौला गुरु जी को दो तलवारें धारण किये, सिर पर कलगी सजाये और हाथ पर बाज बिठाये देखकर बड़ा हैरान हुआ। उसने गुरु जी से पूछा, "आप धार्मिक पुरुष किस तरह हो सकते हैं जबकि आपकी पत्नी और परिवार है और आप दुनियावी दौलत और शस्त्रों को धारण करने वाले हो ?" गुरु जी ने उत्तर दिया, "एक पत्नी मनुष्य का ईमान है, उसके बच्चे उसका निशान हैं, दौलत उसे जीवन–यापन के योग्य बनाती है और शस्त्र ज़ालिमों का नाश करने के लिए ज़रूरी हैं।"

उसके बाद गुरु जी वज़ीराबाद गये और फिर हाफ़िज़ाबाद, ये दोनों जिले गुजरांवाला (अब पाकिस्तान) में हैं। फिर वह 'मट्टो भाई' नाम के एक गाँव में गये और सिख धर्म के उपदेशों का प्रचार किया। वहाँ गुरु जी ने कुछ समय गुजारा। फिर गुरु जी लाहौर से करीब पाँच सौ मील दूर मंडियाली नाम के स्थान पर पहुँचे। यहाँ गुरु जी के एक बड़े श्रद्धालू सिख द्वारका ने अपनी सुपुत्री बीबी मरवाही का विवाह गुरु जी के साथ किया।

गुरु जी अभी मंडियाली में ही थे कि उनके सिख 'लंगाह' ने गुरु जी को सूचना दी कि कुछ शाही अफसर और काज़ी, बादशाह के मन में लगातार ज़हर भरने की कोशिश कर रहे हैं कि सिखों के सारे पवित्र स्थान गिरा दिये जाएँ। इस पर गुरु जी ने कोई खास ध्यान नहीं दिया और गुरु नानक देव जी के

जन्म स्थान तलवंडी चले गये। वहाँ नमाणी के मेले में एकत्र हुए लोगों को धर्म का उपदेश दिया। वहाँ से गुरु जी मदाई गये। उनका अगला पड़ाव लाहौर जिले में 'मांगा' था। वहाँ से गुरु जी अमृतसर वापस आ गये, जहाँ हमेशा की तरह सिखों ने उनके सम्मान में बड़ी खुशियाँ मनाईं।

शाहजहाँ के राज्य के समय वे सारे लोग और संस्थाएँ जो गुरु जी के लिए शत्रुता का भाव रखते थे, हर समय ऐसे अवसर की तलाश में रहते थे कि किसी तरह गुरु जी को मार दिया जाए और बढ़ रहे सिख आंदोलन को रोका जाए। हदूर अथवा कहिलूर (नालागढ़) का राजा ताराचंद गुरु जी के पास हाज़िर हुआ और उसने गुरु जी से अपनी रियासत में चरण रखने के लिए प्रार्थना की। इन परिस्थितियों में गुरु जी का विचार एक दूसरा मुख्यालय बनाने का था। उन्होंने अपने सुपुत्र बाबा गुरदिता को राजा ताराचंद के पास भेज दिया और वायदा किया कि कुछ समय बाद वे उसकी रियासत में स्वयं आएँगे। राजा ने गुरु जी के पक्के निवास के लिए एक जमीन का टुकड़ा अर्पण किया। कई लेखक कहते हैं कि गुरु जी ने यह जमीन राजा से कीमत देकर खरीदी थी। इस जमीन पर बाबा गुरदिता जी ने कीरतपुर नगर की नींव रख दी।

मालवे का इलाका अभी भी एक बहुत बड़ी वीरान धरती था और यहाँ के लोग अभी किसी धर्म को नहीं मानते थे। सो, गुरु जी इस इलाके में आये। वे ज़ीरा, रोडे लंडे, गिल्ल, कोटड़ा और हाजी आदि गाँवों में गये। उसके बाद वह मराझ, डब्बवाली, भदौड़, महिल, देद मलूके, देमरू होते हुए डरोली पहुँचे। वहाँ से चलने से पहले गुरु जी ने लोगों को आशीषें–बख्शीशें दीं और एक पोथी के साथ एक कटार यादगार के तौर पर। वहाँ से गुरु जी बड़ा घर, मन्दो, लोपो, सिधवां गये और फिर सिधार पहुँचे। राय जोध, कंगड़ का एक बड़ा जमींदार अपनी पत्नी भागवान जो गुरु जी के सिख भाग मल की पुत्री थी, की प्रेरणा के अधीन गुरु जी की सेवा में हाज़िर हुआ। वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने सिख धर्म धारण करने की इच्छा जताई। गुरु जी ने उसे, उसके भाई उमर शाह और अन्य बहुत से लोगों को सिख बनाया।

बहुत अधिक संख्या में लोग आए और उन्होंने सिख धर्म धारण किया, खास तौर पर मालवा इलाके में। भारतीय धर्मों के इतिहास में पहली बार था कि लोगों को एक ऐसा धार्मिक मार्गदर्शक मिला जो हर प्रकार की लूटमार, अन्याय और जोर–जुल्म के विरुद्ध सामना करने के आदर्श के लिए प्रतिबद्ध था। असल में, गुरु जी की निम्न और दबी–कुचली श्रेणियों से गहरी निकटता और उसकी भलाई के साथ–साथ उन्हें निरन्तर ऊपर उठाने की लगातार कोशिश ही थी जिसने गुरु जी को जनता की आँखों का तारा बना दिया।

गुरु जी का परिवार :

गुरु जी के पाँच सुपुत्र और एक सुपुत्री थी। ये इस प्रकार थे :
बाबा गुरदिता, माता दमोदरी की कोख से 1613 में।
बीबी वीरो का जन्म माता दमोदरी जी से 1615 में।
बाबा सूरज मल माता मारवाही की कोख से 1617 में।
बाबा अनीराय का जन्म माता नानकी जी से 1618 में।
बाबा अटल राय का जन्म माता नानकी जी से 1619 में।
बाबा तेग बहादुर का जन्म माता नानकी जी से 1621 में।

अमृतसर में गुरमुख नाम का सिख था जिसका इकलौता पुत्र मोहन था। बाबा अटल और मोहन एक साथ खेला करते थे। एक दिन वे रात तक खेलते रहे। जीत बाबा अटल की हुई और यह फैसला हुआ कि खेल को अगले दिन सवेरे जारी रखा जाए। जब मोहन गया तो उसे एक काले नाग ने डस लिया और मोहन की मृत्यु हो गई। अगली सवेर बाबा अटल मोहन के घर गये तो उन्हें बताया गया कि मोहन की मृत्यु हो गई है। बाबा अटल ने यकीन नहीं किया कि मोहन मर चुका है और उसने मृत मोहन को उठाकर जिन्दा कर दिया। इस पर गुरु जी बड़े गुस्से में बाबा अटल से बोले, "ज़रूरी है कि तू करामातें करें, जब कि मैं लोगों को अकाल पुरुख की रज़ा को मानना सिखा रहा हूँ।" बाबा अटल ने उत्तर दिया, "महान पातशाह, आप जुग जुग जियो, मैं सचखंड(स्वर्ग) में चला जाता हूँ।" यह कहकर बाबा अटल चले

गये और अमृत सरोवर में स्नान किया, फिर हरिमंदर साहिब की चार परिक्रमाएँ कीं। जैसे ही उसने सुबह की भक्तिभावना पूर्ण की, उसकी ज्योति अकाल पुरुख की ज्योति में समा गई। उस समय उसकी आयु केवल नौ वर्ष की थी।

गुरु हर गोबिंद साहिब ने अपने सबसे बड़े सुपुत्र बाबा गुरदिता को बुड्ढ़न शाह के बारे में बताया और उसकी श्रद्धा भावना की प्रशंसा की। गुरु जी ने गुरदिता जी को बुड्ढ़न शाह के पास भेजा। बाबा गुरदिता जी अपनी धर्म पत्नी बीबी नत्ती जी और अपने सुपुत्र धीरमल्ल को साथ लेकर सतलुज दरिया के किनारे रह रहे पीर बुड्ढ़न शाह को जाकर मिले। बाबा गुरदिता जी ने याद दिलाते हुए बुड्ढ़न शाह से कहा, "सांई जी, गुरु जी ने आपके पास दूध अमानत के तौर पर रखा था। वह मुझे दो। गुरु जी मेरे पिता हैं और उन्होंने मुझे दूध के लिए भेजा है।"[6] बुड्ढ़न शाह ने दूध दिया और कहा जाता है कि यह वैसा ही ताजा था, जैसा कि दूध दुहने के समय होता है। बाबा गुरदिता जी और उनकी धर्म पत्नी बीबी नत्ती जी कीरतपुर ही रहते रहे। उनके घर में 16 जनवरी सन् 1630 ई. को एक सुपुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम उन्होंने हर राय रखा।

बाबा बुड्ढ़ा जी :

बाबा बुड्ढ़ा जी अपनी भक्तिभाव में तत्पर अपने गाँव रामदास ही टिके रहे। जब उन्होंने अपना अन्त समय नज़दीक देखा तो गुरु जी से अपने वायदे के अनुसार आने के लिए विनती कर भेजी। गुरु जी ने आकर कहा, "बाबा बुड्ढ़ा जी, आपने लम्बी उम्र बिताई है और सदैव गुरु साहिबान के संग रहे हो। कुछ शिक्षा दो।" बाबा बुड्ढ़ा जी ने उत्तर दिया, "महान पातशाह, आप एक सूरज हो, मैं तो आपके सामने एक जुगनू हूँ। आप मेरी रक्षा करने आये हो और मृत्यु के समय मेरी विनती सुनने। मैं गुरु घर की छह पुश्तों से सेवक रहा हूँ। अगले संसार में मेरी सहायता के लिए आना, और जब मैं मृत्यु के दर में से निकलूँ तो मुझे कष्ट न हो, ऐसी मेहर करना। मुझे पूरा विश्वास है कि वह द्वार मुक्ति का मुख्य द्वार होगा। यह मेरा पुत्र भाना है आपकी सेवा के लिए, इसकी बांह थाम लो और इसे अपने चरणों में रखो।" गुरु जी ने उत्तर दिया, "बाबा बुड्ढ़ा जी, आपका अवश्य कल्याण होगा। आपकी नम्रता इसका यकीन

दिलाती है।" फिर गुरु जी ने बाबा बुड्ढ़ा जी के सिर पर हाथ रखा और आशीष दिया। बाबा बुड्ढ़ा जी ने शरीर त्याग दिया। गुरु जी और उनके सिखों ने बाबा बुड्ढ़ा जी के लम्बे, पावन और महत्वपूर्ण जीवन के बाद हुई मृत्यु पर बधाइयों के सोहिले गाये और बाबा बुड्ढ़ा जी की ओर से सिख धर्म का प्रचार करने और संगठित करने में की गई उनकी सहायता की प्रशंसा की। उनकी चिता को गुरु जी ने स्वयं अग्नि दी।

भाई गुरदास जी :

भाई गुरदास चौथे, पाँचवें और छठे गुरु साहिबान का समकालीन था और उन्हें और उनके अन्य समकालीनों को जानता था, विशेष कर बाबा बुड्ढ़ा जी को जो गुरु नानक देव जी के समय से सिख बने हुए थे। सिख धर्म के सिद्धान्त भाई गुरदास की 'वारों' में दिये हुए हैं। ये चौबीस वारें हैं और हरेक वार भिन्न–भिन्न संख्याओं की पउड़ियों में बंटी हुई है और हरेक पउड़ि में छह से आठ तुकें हैं।

एक सुबह गुरु हर गोबिंद साहिब भाई गुरदास के पास गये जिसका अन्त समय करीब आ रहा था। भाई गुरदास ने गुरु जी के सम्मुख विनती की कि उसने जो कोई पाप किया हो, उसकी माफी बख्शें। गुरु जी ने उत्तर दिया, "भाई गुरदास जी, मैं आपके द्वारा सिख धर्म की रूप–रेखा निखारने में दी गई सहायता के लिए आपका धन्यवाद करता हूँ। गुरसिखों में आप का नाम अमर रहेगा।" यह सुनकर भाई गुरदास जी ने अकाल पुरुख का ध्यान किया और अपने ऊपर चादर लेकर आँखें मूंद सदा की नींद सो गये। यह शुक्रवार, भादों महीने के शुक्ल पक्ष का पाँचवा दिन, सम्वत् 1686 (सन् 1629 ई.) था। भाई गुरदास जी का अन्तिम संस्कार करके गुरु जी अमृतसर लौट गये।

गुरु जी कीरतपुर में :

गुरु जी ने कीरतपुर 1635 से 1644 तक निवास किया। यह हिमालय पर्वत की तलहटी में बसा पहाड़ी नगर है। गुरु जी द्वारा इस स्थान को चुनने का एक कारण था। उस जमाने में जब सवारी और आवागमन का विकास नहीं हुआ था, आने जाने के साधन नाममात्र ही थे, गुरु ने सोचा कि इस स्थान को चार युद्धों के बाद मुगल राज्य और सिखों के बीच होने वाले लड़ाई–झगड़ों से वे दूर रख सकेंगे। इस क्षेत्र में पहाड़ी राजे थे जो गुरु जी के बड़े ही श्रद्धालू थे क्योंकि गुरु जी की मेहर से ही उनकी ग्वालियर किले से रिहाई हुई थी। कई तो सिख धर्म का बहुत मान–आदर करने लग पड़े थे। ऐसे कुछ हालात थे जिनके कारण, लगता था, गुरु जी ने कीरतपुर को अपना मुख्य स्थान बनाया था।

जब गुरु जी युद्ध क्षेत्र में व्यस्त थे तो बाबा गुरदिता जी प्रबंधकीय कामों की देखभाल करते थे। सन् 1636 में गुरु जी ने बाबा गुरदिता को चार मुख्य प्रचारक नियुक्त करने के लिए कहा : अलमस्त, फूल, गोंदा और बाबा हसना। अलमस्त को पूरब में सिक्खी का प्रचार करने के लिए मुख्य प्रबंधक बनाया। बाबा हसना जो अलमस्त का छोटा भाई था, पोठोहार, कश्मीर, छछ और हज़ारा के लोगों में लग गया। इसी प्रकार, फूल और गोंद को दुआब का क्षेत्र प्रचार के लिए सौंपा गया। इन चारों सज्जनों ने अपने–अपने सौंपे गये इलाकों में चार उदासियाँ– जिन्हें धूएँ या अंगीठे कहा जाता था, सिख धर्म की जोत को प्रगट करने वाले निशान के तौर पर स्थापित कीं। इनसे अलग, गुरु जी ने भाई बिधी चंद को बंगाल भेजा। इससे पहले गुरु जी भाई गुरदास को काबुल और उसके बाद बनारस गुरु जी के सन्देश को लोगों में उजागर करने और घोड़ों के व्यापार के लिए उत्साहित करने को भेज चुके थे।

एक दिन बाबा गुरदिता जी शिकार खेलने गये। गलती से एक सिख ने दूर से हिरण समझकर एक गाय को मार दिया। चरवाहे आये और उस सिख को उन्होंने हिरासत में ले लिया। बाबा गुरदिता सिख की सहायता करने के लिए आये और चरवाहों को हर्जाना देने की पेशकश की। वे लोग गुरु जी के सुपुत्र से गाय के जीवन के सिवाय और कुछ लेने को तैयार नहीं थे। अगर वे गऊ को जिन्दा कर दें तो गुरु जी गुस्सा होंगे, जिस तरह वह पहले बाबा अटल के साथ हुए थे। और अगर वह चरवाहों को संतुष्ट न कर पाये तो वे लोग उस सिख को बंधक बनाकर रख लेंगे। आखिर, उन्हें गऊ को जिन्दा करने के लिए मनाया गया। जब गुरु जी को यह सारा वाकया बताया गया तो उन्होंने कहा, "यह मेरे लिए खुशी की बात नहीं कि कोई भी अपने आप को अकाल पुरुख के बराबर बनाये और मुर्दे को जिन्दा करे। ऐसे तो हर कोई मेरे आगे मृतक शरीर लेकर आने लग जाएगा और मैं किसे जिन्दा करने के लिए चुनूँगा ?" बाबा गुरदिता ने उत्तर दिया, "पातशाह, आप जुग जुग जियो, मैं चला जाता हूँ।" यह कहकर वह बुड्ढ़न शाह की दरगाह पर गये, अपनी सोटी को जमीन में गाड़कर लेट गये और शरीर त्याग कर परलोक सिधार गये। उस समय सन् 1638 में वह एक छोटी उम्र अर्थात केवल 24 वर्ष के थे।

तब गुरु जी ने बाबा गुरदिता जी के सबसे बड़े सुपुत्र धीरमल्ल को करतारपुर से बुला भेजा और साथ ही, आदि–ग्रंथ साहिब, जो उसकी सुपुर्दगी में था, भी मंगवा भेजा। गुरु जी की इच्छा थी कि बाबा गुरदिता जी की आत्मा की शान्ति के लिए पावन ग्रंथ साहिब का पाठ किया जाए और धीरमल्ल अपने पिता की मृत्यु के बाद पिता के स्थान और जायदाद का वारिस होने की एवज में पगड़ी धारण करने को आ जाए। धीरमल्ल ने यह कहकर आने से इन्कार कर दिया, "मेरे पिता कीरतपुर में नहीं रहे। मैं किसके पास जाऊँ ? यह गुरु जी का भय ही था जिसके कारण मेरे पिता की मृत्यु हुई। मैं अभी मरना नहीं चाहता। मैं स्वयं ही पिता के लिए आदि–ग्रंथ का पाठ करवा लूँगा।" इस प्रकार उसने पावन आदि ग्रंथ साहिब को अपने पास रखे रखा यह सोचकर कि जिसके पास ग्रंथ साहिब होगा, वही गुरु होगा। भाई बिधी चंद के पास ग्रंथ साहिब की एक अधूरी नकल थी। सो, उस समय इससे पाठ किया गया। एक दिन गुरु जी की पत्नी माता नानकी जी ने गुरु जी से पूछा, "सांई जी, आप सदैव हर राय जो आपका पोता है, पर बड़ी कृ पा दृष्टि रखते हैं, पर अपने सुपुत्र तेग बहादुर की पूछ–पड़ताल कभी नहीं करते। मेरी इच्छा पूरी करो और गुरगद्दी उसी को बख्शो।" गुरु जी ने उत्तर दिया, "तेग बहादुर गुरुओं का गुरु है। दूसरा कोई नहीं जो

असहनीय को इतनी अच्छी तरह सहन कर सके, जैसे तेग बहादुर कर सकता है। उसे ईश्वरीय ज्ञान मिल गया है और उसने सांसारिक मोह को त्याग दिया है। अगर आप धैर्य रखो तो गुरगद्दी उसके पास लौट आएगी।"

एक दिन बड़ा दीवान सजाया गया। जब सब इकट्ठा हुए तो गुरु जी हर गोबिंद साहिब उठे, हर राय जी का हाथ पकड़कर उन्हे गुरु नानक देव जी की गद्दी पर बिठा दिया। बाबा बुड्ढ़ा जी के सुपुत्र भाई भाना ने हर राय जी के माथे पर तिलक लगाकर गले में फूलों का हार पहना दिया। गुरु जी ने पाँच पैसे और नारियल हर राय जी के आगे रखकर माथा टेका और उनका गुरु बनना घोषित करते हुए कहा, "अब मुझे हर राय जी में ही पहचानना। गुरु नानक साहिब की रूहानी शक्ति इनमें समा गई है।"

इसके बाद गुरु हर गोबिंद साहिब ने मार्च 1644 में कीरतपुर में इस संसार को छोड़ दिया। जब अन्तिम संस्कार सम्पूर्ण हुए तो माता नानकी जी गुरु जी के आदेश के अनुसार अपने सुपुत्र तेग बहादुर के साथ बकाला चले गये और वहीं पर रहे, तेग बहादुर जी को गुरगद्दी मिलने के समय तक।

1. वज़ीर खान गुरु अर्जन देव जी के समय पंजाब का सूबेदार था। उसको जलोदर की बीमारी हो गई थी और सुखमनी साहिब का पाठ सुनने से वह बिलकुल अरोग हो गया और गुरु जी का सिख बन गया।
2. कई लेखक लिखते हैं कि गुरु जी को उनकी तरफ से लेने वाली रकम की अदायगी न होने के कारण कैद किया गया था। अगर यह या अन्य कोई उनको कैद करने का कारण होता, तो वह बावन राजाओं को किले में से कैसे रिहा करवा देते ? गुरु जी के बादशाह के साथ अच्छे संबंध थे। बादशाह ने अपनी बीमारी के कारण गुरु जी को ग्वालियर किले में जाने के लिए विनती की थी और इसकी एवज में उसने उनकी राजाओं की रिहाई की इच्छा को पूरा किया।
3. प्रसिद्ध सिख इतिहासकार भाई काहन सिंह लिखते हैं कि कौलां कमला नाम की एक हिंदू लड़की थी। काज़ी रुस्तम खान ने उसे खरीदकर अपनी दासी बना लिया और इस्लाम की शिक्षा दी।
4. कई लेखक कहते हैं कि इस तरह न तो गुरु जी और न ही बादशाह गये थे, केवल उनके अपने–अपने आदमी ही गये थे।
5. कई लेखकों का विचार है कि बिधी चंद कभी भी बादशाह से नहीं मिला था।
6. कुछ लेखकों का विचार है कि गुरु हर गोबिंद साहिब स्वयं सांई बुड्ढन शाह के पास गये थे और उससे दूध मांगा था। जब गुरु नानक देव जी बुड्ढन शाह से मिले थे तो इसने गुरु जी के सत्कार में दूध भेंट किया। गुरु जी ने वायदा किया था कि फिर आएँगे और दूध को छकेंगे। अब गुरु हर गोबिंद साहिब ने बुड्ढन शाह को दूध के बारे में किये गये वायदे की याद दिलाई। उसने कहा कि "आप गुरु नानक नहीं लगते जिन्हें दूध भेंट किया गया था।" इस पर गुरु हर गोबिंद जी ने गुरु नानक जी का रूप धारण करके दूध पीकर अपना वायदा पूरा किया।